रामवृक्ष बेनीपुरी

रचना संचयन

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ–रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं, इसे नीचे बैठा लिपिक लिपिबद्ध कर रहा है । भारत में लेखन-कला का सम्भवतः सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख ।

नागार्जुन कोण्डा, दूसरी सदी ई.

सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली

रामवृक्ष बेनीपुरी रचना संचयन

चयन एवं सम्पादन
डॉ. मस्तराम कपूर

साहित्य अकादेमी

Ramvriksha Benipuri : Rachana Sanchayan : An anthology of selected writings in Hindi, compiled and Edited by Mastaram Kapoor, Sahitya Akademi, New Delhi

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय

रवीन्द्र भवन, 35, फ़ीरोज़शाह मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

विक्रय विभाग : स्वाति, मन्दिर मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

क्षेत्रीय कार्यालय

172, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग, दादर, मुम्बई 400 014

जीवनतारा बिल्डिंग, चौथी मंज़िल, 23 ए/44 एक्स,
डायमंड हार्बर रोड, कलकत्ता 700 053

343-345, अन्ना सालई, तेनामपेट, चेन्नई 600 018

सेंट्रल कॉलेज परिसर, डॉ. बी.आर. अम्बेडकर मार्ग, बंगलौर-560 001

ISBN 81-260-1027-4

मूल्य : 350 रुपये

शब्द संयोजक एवं मुद्रक : नागरी प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली 110032

अनुक्रम

खण्ड : तीन

खण्ड : चार

खण्ड : पाँच

खण्ड : छह

खण्ड : सात

जीवन-परिचय

डॉ. सुरेन्द्रनाथ दीक्षित

अन्धकार के ख़िलाफ़ रोशनी की तलाश के लिए सतत बेचैनी का नाम है—'बेनीपुरी'। यह चिरविद्रोही बेनीपुरी अपने विलक्षण व्यक्तित्व में जीवन की बहुरंगी धाराओं को एकत्र समेटकर जब तक जीया, वाग्मती की कलकल उच्छल धार की तरह चतुर्दिक् वाधाओं से अहर्निश टकराता ही रहा। विपत्तियों के झंझावातों, नियति के थपेड़ों से जूझता ही रहा। न जाना उसने विश्राम, न आराम। वह महायात्री अविराम चलता रहा और चलती रही जीवन-संगिनी लेखनी—क्रान्ति की चिगारियों को प्रज्वलित करती, आन्दोलनों का आह्वान करती। सच तो यह है कि आन्दोलन एक अपर पर्याय है बेनीपुरी का। बालपन से परिनिर्वाण तक के उनहत्तर वर्षो की आयु में उनका कर्ममय जीवन आन्दोलनों की अटूट शृंखला ही है।

चिरविद्रोही बेनीपुरी सतत बेचैन, संघर्षरत 'माटी की मूरतों' के गढ़नेवाले, उनमें प्राणों की स्फूर्ति भरनेवाले, आत्मा के शिल्पी थे। उनके शिल्प का परिदृश्य था कितना विराट् और भव्य! उनकी संवेदना क्रान्ति के ख़ून-पसीने से सनी थी। बिहार में समाजवाद के प्रथम प्रकल्पक, किसान आन्दोलन के अग्रणी, युवाओं के हृदयों में गुलामी के ख़िलाफ़ संघर्ष को लहराने वाले, तरुणाई की प्रतिमूर्ति, जो न झुके, न टूटे। पत्रकार ऐसे ओजस्वी और निर्भीक कि विद्रोह के स्फुलिगों से दहकते लेखन के लिए उनकी बार-बार की जेल-यात्रा जीवन की गति और शक्ति हो गई। राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' ने कितना सच कहा था—"नाम तो मेरा दिनकर है पर असल सूर्य तो बेनीपुरी थे।"[1]

जीवन-प्रभात

बीसवीं सदी के शुभारम्भ से कुल नौ दिन पहले 23 दिसम्बर, 1899, पूस की ठिठुरती, ओस की बूँदों से भरी धरती का वह दूर-दूर तक पसरा धानी आँचल, भरथुआ चौर के पूर्वी क्षितिज पर घने कुहासे को भेदकर उदित होती सूरज-किरणों की लाली ज्यों ही फूटी कि बेनीपुर के एक ग़रीब किसान परिवार के घर में नन्हे-से लाल के 'चेहाँ-चेहाँ' की ध्वनि से घर-ऑगन, पास-पड़ोस ख़ुशियों से भर उठा। कितने तप, त्याग, व्रत,

उपवास की अटूट साधना, लम्बी प्रतीक्षा के बाद अपनी माँ की गोद को निहाल करने और पिता फूलवन्त सिंह को धन्य करने यह धरती-पुत्र जन्मा। इसने अपने निराले कर्तव्यों से अपने गाँव का नाम तो उजागर न किया हो—उसकी उज्ज्वल कीर्तिलता की सुगन्ध कहाँ किस क्षेत्र में न फूटी, फैली! कि बिहारवासियों का मस्तक गौरव से उन्नत हुआ। प्रसिद्ध यायावर देवेन्द्र सत्यार्थी के शब्दों में, "बिहार ही नहीं, पूरा भारत उनपर गर्व करता है"।[2]

बालक रामवृक्ष का पालन-पोषण बड़े नाज़ो-अदा से हुआ। ममतामयी माँ बेटे को अपनी आँखों की पुतली बनाकर रखती। बालक नटखट भी कम न था। तोड़-फोड़, उलट-पलट, उच्छृंखल, ज़िद्दी, दुलार से टेढ़ा, पर वत्सला माँ का प्रेम भाग्य में बदा न था। दूधमुँहे बेटे की अबोध उम्र में ही लम्बी बीमारी के बाद बालक रामवृक्ष की माँ चल बसी। अन्तिम साँस ले रही माँ के प्राणपखेरू तभी उड़े, जब अपने इस बेटे के हाथ से गंगाजल की पवित्र अमृत बूँदें कण्ठ तक गयीं। मानो अबोध शिशु से तर्पण की बूँदों को पा तृप्ति से जो आँखें मुँदीं, वे सदा के लिए मुँदी रह गयीं।

उन दिनों अन्धविश्वास और अज्ञान का कैसा घना कुहासा जमा था अपने भारतीय समाज में! असमय ही मृत माँ का प्रेत अपने शिशु को अपने पास न ले जाए, सो माँ के शव की टाँगों में दाह कर्म से पहले लोहे की कीलें ठोंक दी जाती थीं, कि यह लौट न सके। बेनीपुरी की प्यारी माँ की टाँगों में ऐसी ही कीलें ठोंक दी गयी थीं। वेनीपुरी इस क्रूर अन्धविश्वास को याद कर बाद के वर्षो में सिहर-सिहर उठते और आक्रोश उनका यों फूट उठता—"जहाँ माँ का, मातृत्व का, सन्तान-प्रेम का ऐसा अपमान हो, निरादर हो, उस समाज को जहन्नुम में जाना चाहिए"।[3]

वस्तुतः बेनीपुरी के बाल्य जीवन का यह 'कील-प्रसंग' उनके भावी विद्रोही जीवन का, उनकी मानस-यात्रा का प्रथम प्रस्थान बिन्दु है। उन्होंने बाद के वर्षों में समाज की अस्वस्थ परम्पराओं का बार-बार भंजन किया। सामाजिक समता की स्थापना के लिए शिखासूत्र तक त्याग दिया। नाम के आगे की जातीय उपाधि उठा फेंकी, 'श्री रामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी' से केवल 'श्री रामवृक्ष बेनीपुरी' रह गये। क्योंकि उससे ब्राह्मणत्व की गन्ध जो फूटती थी![4] यहाँ तक कि परमात्मा तक को ताक पर रख दिया।

चार-पाँच वर्षों बाद ही मातृहीन बालक रामवृक्ष के माथे पर, पिता के प्रेम की वह आख़िरी छाया भी घनी अँधेरी रात के रूप में सहसा बदल गयी। पिता की मौत ने रामवृक्ष को सच्चे अर्थो में अनाथ बना दिया। रामवृक्ष निराधार, अवलम्बहीन, कितना निराश्रित था? कितना सूना-सूना, उदासी से भरा इसका यह आरम्भ का जीवन! नियति कितनी क्रूर हो, अपने मज़बूत थपेड़ों से पीट-पीटकर कुम्भकार की तरह उसके भावी जीवन को कठोर संघर्ष के लिए इस बालक के व्यक्तित्व के, रग-रग में इस्पाती ताक़त दे रही थी।

यद्यपि बालक रामवृक्ष के पिता-माता बाल्य जीवन में ही चल बसे, पर उन दोनों

की धुँधली याद उनके हृदय-पट से कभी नहीं मिटी। दाह-कर्म के समय की पिता की शान्त, सौम्य, आकृति अभी भी आँखों में इतने वर्षों बाद तैर जाती और माँ को स्मरण कर बाद के वर्षों में तो आँगन में रखा माँ का निष्प्राण शरीर प्रौढ़ बेनीपुरी को भी श्रद्धा और चिरन्तन मातृप्रेम से आकुल-व्याकुल कर देता–

"माँ, माँ, प्रणाम माँ। तुम मुझे छोड़कर उस सन्ध्या को कहाँ चली गयी माँ? तुम चली गयी और मेरे लिए छोड़ गयी टकटकी बँधी, गीली-गीली, डबडबाई पुतलियों की वह करुण स्मृति, जो मुझे व्याकुल बनाती है, रुलाती है, ढाढस देती है और अहर्निश रक्षा करती है। प्रणाम माँ, माँ, माँ।"[5]

दूसरे पिता की छाया में!

बालक रामवृक्ष पिता को खोकर जब बेनीपुर से वंशीपचड़ा मामा के यहाँ आये तो इतना सहज, अयाचित स्नेह, लाड़-प्यार, दुलार अपने मामा से मिला कि सचमुच उन्हें दूसरा पिता मिल गया! मामा थे रईस मिज़ाज के पूरे शाहख़र्च और धर्मपरायण। उनके शानदार बैठका में कभी *सूरसागर*, कभी *सुखसागर* और कभी *रामायण* की कथा होती। यह सब सुनते-सुनाते रक्त में अनजाने भक्ति-भावना और साधना का भाव सुगबुगा उठा। नित पूजा-पाठ, चन्दन-लेप और रामायण का नवाह पाठ करने लगे बेनीपुरी। धीरे-धीरे रामायण कण्ठस्थ होने लगी। तुलसीकृत रामायण के इसी पाठ ने बेनीपुरी के बाल-हृदय में साहित्यिकता का जो मधुर दीप प्रज्वलित किया, दिन-दिन वह उज्ज्वलतर होता गया। जीवन में आये आँधी-तूफ़ानों में भी साहित्य का वह दीप नीरव, निष्कम्प जलता ही रहा।

सच तो यह है कि जीवन के उन आरम्भिक वर्षों में तबके रामवृक्ष 'राम' और 'रामकथा' के पात्रों के सपने देखते। उसी में एकदम रमे रहते। जब रामवृक्ष ने अपने सपनों की बात पहुँचे हुए सन्त को सुनायी तो उन्होंने कहा–तुम बड़े भाग्यवान् हो कि सपने में 'राम' तुम्हें दर्शन देते हैं। किसी से भी यह न कहना। उस दिन 'राम' में 'रमा' 'रामवृक्ष' अपने भाग्य पर फूला नहीं समाया।[6] और यहीं वंशीपचड़ा में आरम्भिक शिक्षा पायी उसने। उर्दू भी मेनहत के साथ पढ़ी और पाटी पर लिखने का रियाज किया। मामा की दिलीख़्वाहिश यही थी कि भगिना उर्दू पढ़-लिखकर ताईदी करेगा और सुखी, सम्पन्न होगा। पर नियति जैसे पर्दे के पीछे खड़ी मामा की चाह पर मुस्करा रही थी। मेरे मन कुछ और है, विधना के कुछ और। सो एक दिन ममेरे बहनोई आये। अकस्मात् उन्हें अपने साथ लेते गये पढ़ाने। वंशीपचड़ा से बहुत दूर। पर बेनीपुर की बाढ़ जैसे बेनीपुरी के नस-नस में समा गयी थी, उनके रक्त में उनकी चेतना को सतत तरंगित और आलोकित करती ही रही, वैसे ही वंशीपचड़ा का प्रवास उनका जीवन-व्यापी मधुर राग ही हो गया।

बेनीपुरी की किशोरावस्था वंशीपचड़ा में बीती। वहीं से आत्मीयता और जीवनदायी

सौन्दर्यानुभूति का रस पीते रहे। बेनीपुर में बाढ़ के कारण कहीं पेड़ पौधे नहीं थे, पर वंशीपचड़ा में बाढ़ नहीं आती थी। यहाँ चारों ओर सघन अमराइयों की हरीतिमा, लीची के फलों की मस्ती भरी लाली, नीलाकाश को शाद्वल बनाती रहती। हर ऋतु में कोई न कोई फल डालियों पर झूमते नज़र आते। प्रकृति के इस नयनाभिराम रूप ने बेनीपुरी के किशोर हृदय को ऐसा मोहाविष्ट कर लिया कि जब भी वे कुछ लिखते तो वंशीपचड़ा की वह रमणीय प्रकृति-सुन्दरी उनकी लेखनी पर बरबस उतर पड़ती।

बालस्वप्नों में देशभक्ति नाम की देवी!

अकस्मात् अध्ययन की तलाश में अपने बड़े ममेरे बहनोई के साथ जब उस क़स्बे में (सुरसंड, वर्तमान सीतामढ़ी ज़िलान्तर्गत) बेनीपुरी पहुँचे तो लगा वे एकदम नयी दुनिया में आ गये।

यहाँ ही उन्होंने पहले-पहल अंग्रेज़ी वर्णमाला सीखी, उर्दू-फ़ारसी छूट गयी। वहाँ वंशीपचड़ा में नित कथाएँ होतीं और यहाँ मिडिल स्कूल के सेक्रेटरी साहब बड़ा ही ओजस्वी भाषण देते। हेडमास्टर साहब कविता सुनाते और उनकी कविताएँ छपा करतीं। किशोर बेनीपुरी के मन में यहाँ के नये परिवेश ने नए-नए अस्पष्ट, धुँधले सपनों की छाया को जन्म दिया। वह सोचता—काश, वह ओजस्वी वक्ता होता, सभा में वह बोलता और लोग प्रभावित हो, तालियाँ बजाते। वह कवि होता, लोग उसकी कविता मन्त्रमुग्ध हो सुनते, पत्र-पत्रिकाओं में उसकी कविताएँ भी छपा करतीं। क्या मैं कवि नहीं हो सकता? क्या मैं लेख नहीं लिख सकता? कल्पना में डैने लगे, वे उड़ने के लिए डैनों को फरफराने लगे, किन्तु तब तक पर कहाँ आये थे? प्रथम महायुद्ध का वह चिरस्मरणीय रोमांचक समय 1914-18 का। तब तो पत्र-पत्रिकाएँ उस क़स्बे में आतीं, उनमें लाल (लाला लाजपत राय), बाल (बाल गंगाधर तिलक) और पाल (बिपिनचन्द्र पाल) की गर्म राजनीतिक चर्चाएँ भरी रहतीं। एक ओर युद्ध, दूसरी ओर देशभक्ति और स्वाधीनता की हिलोरें उठतीं। उसी कच्ची उम्र में किशोर रामवृक्ष के हृदय को कहीं गहराई तक वह छू गयी— *'देशभक्ति नाम की नयी देवी सामने आयी'*। वह महसूस करने लगा उस माहौल में, कण-कण में पसरती उस सुगन्ध को। देश के साथ स्वतन्त्रता की बात नत्थी हुई। गुलामी सबसे बड़ा अभिशाप है। आज़ादी के लिए बड़ी से बड़ी क़ुर्बानियाँ भी छोटी है।[7]

फ़िज़ाँ में मुज़फ़्फ़रपुर में बमप्रहार और खुदीराम बोस तथा प्रफुल्ल चाकी शहादत की ऊष्मा, दाहकता और क्रान्ति की ललकार धीमी न पड़ी थी। इस बमप्रहार पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने मराठी केसरी में लिखा—भारत के पूर्वी क्षितिज-मुज़फ़्फ़रपुर में स्वाधीनता का सूरज उदित हो चुका। उसे कोई बड़ी से बड़ी शक्ति रोक नहीं सकती। उनकी इस प्रतिक्रिया पर उन्हें छह वर्षों के कारावास की सज़ा मांडले जेल में भोगनी पड़ी। (*बिहार के स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास*, पृष्ठ 121, भाग-1 डॉ. के. के. दत्त) किशोर बेनीपुरी के मन में ये भाव अंकुरित हो ही रहे थे

कि सहसा इनके बहनोई की मृत्यु हो गयी। सब कुछ अस्त-व्यस्त और उलट-पुलट गया। जीवन एकदम चंचल हो उठा।

जब बेनीपुरी ने बी. बी. कॉलिजिएट, मुज़फ़्फ़रपुर में प्रवेश लिया तब नयी शिक्षा, नयी सभ्यता, नयी संस्कृति, और नयी जीवन-शैली से भारतीय मानसिकता तेज़ी से प्रभावित हो रही थी। दिन-रात पढ़ना, कविता का अभ्यास और पत्र-पत्रिकाओं के पढ़ने की रुचि उत्तरोत्तर ऐसी पनपी कि उसी कम उम्र में हिन्दी साहित्य सम्मेलन की 'विशारद' परीक्षा में उत्तीर्ण हो अपने बड़े-बुज़ुर्गों का प्रोत्साहन आशीर्वाद पाया।

बी. बी. कॉलिजियट, मुज़फ़्फ़रपुर में बेनीपुरी का अध्यनकाल (1915-21) उनके भविष्य के निर्माण की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वे सच्चे निष्ठावान् विद्यार्थी की तरह दिन-रात पढ़ते, पाठ्यक्रम की पुस्तकों की अपेक्षा उस समय की पत्र-पत्रिकाओं के पढ़ने में उनका मन कहीं ज़्यादा रमता। क्लास में भी अव्वल आते। आदर्श विद्यार्थी का जीवन जीते। 'सादा जीवन, उच्च विचार' की तीखी धार पर चलते। एकदम सादे कपड़े पहनते, रूखा-सूखा खाते। पाँवों में न जूते, न चप्पल। एक मामूली-सी धोती और उस समय की मिरजई। ऐसी जीवन-शैली से, स्वाध्याय और तप का जीवन जीने से जो थोड़े से पैसे बच जाते, उनसे ही वे ज्ञानवर्द्धक रोचक पत्र-पत्रिकाएं ख़रीदते।

उन्हीं दिनों (वैशाखी पर्व, 13 अप्रैल 1919) जलियाँवाला बाग़ में अंग्रेज़ शासकों ने भयानक नरमेध किया था। हज़ारों लोगों को डायर ने गोलियों की आग में भून दिया। उसी पंजाब हत्याकाण्ड की नृशंसता पर बहुत ही फड़कती हुई, देशभक्ति के भाव से भरी बेनीपुरी की कविता 'प्रताप' में छपी तब कविता का छपना बड़े शान-शोहरत की बात मानी जाती थी। ऐसी कच्ची उम्र के छात्र की कविता 'प्रताप' जैसे भारत-विख्यात पत्र में छपे यह बात तो सर्वथा कल्पनातीत थी।

गाँधी की आँधी

यह उन ऐतिहासिक दिनों की बात है, जब लोकमान्य तिलक गुज़र चुके थे और गाँधीजी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन की उद्घोषणा करते हुए सारे देशवासियों का आह्वान किया—"छात्रो, स्कूल, कॉलेज छोड़ दो, सरकारी कार्यालयों का बहिष्कार करो, कचहरियों से बाहर आओ, वकीलो, वकालत छोड़ो, देश के ग़रीबों, भूखों की सेवा करो, मैं तुम्हें एक माह में आज़ादी दूँगा।"

बेनीपुरी, दसवीं कक्षा का एक प्रतिभाशाली छात्र! वह गाँधी की इस आँधी में उड़ चला। हेडमास्टर ने बहुतेरा समझाया—"तुम बहुत तेजस्वी छात्र हो, सरकारी स्कालरशिप प्राप्त कर सकते हो। मत जाओ, इस आँधी में।" मन में द्वन्द्व था—मामाजी क्या कहेंगे, जो बड़ी उम्मीदें बाँधकर पढ़ाते हैं। पर नहीं, अन्तर में सुलग रही देशभक्ति की आग ने इक्कीस वर्ष की आयु में बेनीपुरी को उस आँधी में जो झोंका तो वर्षों स्वयं तूफ़ान बने वे लगातार उड़ते ही रहे।

यह क्या विरल संयोग था कि सत्याग्रह आन्दोलन के क्रम में महात्मा गाँधी ने मुज़फ़्फ़रपुर की विराट् सभा को सम्बोधित किया तो बेनीपुरी ने पंजाब हत्याकाण्ड पर छपी अपनी उसी कविता का पाठ महात्मा गाँधी के समक्ष किया। अपने भाषण में गाँधीजी ने उसकी मार्मिक चर्चा की।[8]

पत्रकारिता के प्रवेश-द्वार पर

तभी अपने साहित्य-गुरु और मार्गदर्शक मथुराप्रसाद दीक्षित से बेनीपुरी की भेंट मुज़फ़्फ़रपुर में संयोगवश हुई। वे भी अध्यापकी छोड़ सत्याग्रही हो चुके थे। उन्होंने अपने अधीन पत्र के सम्पादन का प्रस्ताव रखा। उधेड़बुन में पड़े बेनीपुरी के जीवन में विकल्प की ज़मीन मिल गयी।[9] मथुराप्रसाद दीक्षित तब चौधरी टोला, पटना से नवप्रकाशित 'तरुण भारत' के सम्पादक थे। 'तरुण भारत' महात्मा गाँधी के 'यंग इण्डिया' का लगभग हिन्दी-रूपान्तर था। लालबाबू ने इसके लिए महात्मा गाँधी से मिलकर आशीर्वाद प्राप्त किया था। बेनीपुरी अंग्रेज़ी 'यंग इण्डिया' में प्रकाशित लेखों का अनुवाद करते। यहाँ का अल्पकालीन सम्पादकीय जीवन बेनीपुरी जी के लिए कई अर्थों में वरदान सिद्ध हुआ। साप्ताहिक पत्र के सम्पादन का मूल संस्कार बेनीपुरी में यहीं पनपा और काम के प्रति गहरी निष्ठा का भाव और भी उद्दीप्त हुआ कि इस हुनर को कितने अच्छे ढंग से सीखकर इसको पूर्णता के शिखर पर ले जाएँ, वहाँ कुछ ही महीने वे पत्रकारिता का अभ्यास कर सके।

पत्रकारिता के मार्ग-दर्शक शिवजी

इन्हीं बेकारी के दिनों में कुछ दिनों बाद बेनीपुरी ने पटना से प्रकाशित 'किसान मित्र' (1922) का सम्पादन आरम्भ किया। वास्तव में पत्र का वह छद्म नाम था। वह किसानों का शत्रु और ज़मींदारों का पक्षधर था। निदान वहाँ कुछ महीने भी टिकना असम्भव हो गया। उसे छोड़कर चले आये मुज़फ़्फ़रपुर, तो ऐसा रोगग्रस्त हुए कि लगता मौत ज़िन्दगी के द्वार पर दस्तक दे रही है। एक बुढ़िया की दवा से जब स्वस्थ हुए तो वही जीवन की राह की तलाश की बेचैनी चुनौती देती खड़ी थी उनके सामने।

तभी आचार्य शिवपूजन सहाय का एक पत्र मिला, लाल रोशनाई में लिखा, मानों जीवन के घने अन्धकार में सूरज की बाल-किरणें उदित हुई। हास्य रस के मासिक 'गोलमाल' (1924, पटना) के सम्पादन के लिए। आमन्त्रण-पत्र में निर्दिष्ट पते पर बेनीपुरी गये। आचार्य जी ने मार्गदर्शन किया, पत्र निकला। चर्चा तो ख़ूब हुई पर घाटे के कारण संचालक सिमटिया जी को गहने तक बेचने पड़े। उनका आग्रह हुआ कि बेनीपुरी कलकत्ता रह कर सम्पादन करें। पर, बेनीपुरी का मन बिहार से ऐसा बँधा रहा कि वे 'गोलमाल' के सम्पादन के लिए कलकत्ता न जा सके।

पुनः बेनीपुरी फिर चौराहे पर खड़े थे। कई पत्र-संचालकों से बातचीत चल रही

थी कि पुस्तक भण्डार, लहेरियासराय के संचालक आचार्य रामलोचन शरण का पत्र आया—'बालक' (मासिक) के प्रधान सम्पादक के रूप में काम करने के लिए। बेनीपुरी ने उस पत्र को सारे भारत में प्रतिष्ठित कर दिया। वे वहाँ 1925 से 1928 तक रहे। इस लम्बे सम्पादन-काल में वे काशी अक्सर रहा करते। इसी काशी-प्रवास में उन्हें हिन्दी के महान कथाकार मुंशी प्रेमचन्द और नाटककार जयशंकर प्रसाद, जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, लाला भगवान दीन, जगन्नाथ प्रसाद 'रत्नाकर', 'हरिऔध' और रामचन्द्र शुक्ल जैसे साहित्य-महारथियों से निकटता के कारण साहित्य-रचना और शैली की नयी दृष्टि और दिशा मिली।

कोई साढ़े तीन साल बाद 'बालक' से इस्तीफ़ा देकर वे चले तो उन्हें गहरा दुख भी हुआ और अगले क़दम के लिए ख़तरा उठाने की प्रेरणा भी उसी क्षण उन्हें प्रवृत्त करने लगी। 'बालक' के पन्ने-पन्ने में मेरा हृदय-रक्त था। हर आदमी अपनी बालक सन्तान से जो आशाएँ रखता है, इस काग़ज़ी बालक से मैंने भी रखी थी।[10]

बेनीपुरी का चरित्र कठोर संकल्पों का सदा धनी रहा। दुर्भाग्य और विपत्तियों का प्रहार उन्हें उनका सामना करने के लिए कठोरतर बना देता। जिस क़लम और स्याही से उन्होंने 'बालक' से इस्तीफ़ा लिखा, उसी मेज़ पर, उसी के दफ़्तर में, उसी क़लम और स्याही से उन्होंने 'युवक' (मासिक, पटना) के लिए अपील भी लिखी।[11]

यह था बेनीपुरी का सदा दीप्त रहनेवाला पौरुष, आत्मतेज और स्वाभिमान। यही वह अमृत था, जिसे पीकर वह निर्भीक हो संघर्ष के अग्निपथ पर निरन्तर चलते रहे, अविराम! अविराम!

तरुणाई की अंगड़ाइयाँ : युवाशक्ति का आह्वान

बेनीपुरी 'युवक' (मासिक) निकालने के मिशन में ही लगे रहे। उन्होंने अकिंचनता के बावजूद अपनी शक्ति, साहस और साधना के बूते पर 'युवक' को उस युग के बेचैन युवाओं का मार्ग-दर्शक आलोक स्तम्भ बना दिया। बिहार की युवा-राजनीति में व्याप्त राजनीतिक रिक्तता को इस 'युवक' (मासिक) ने ही भरा। इसके मुखपृष्ठ पर बिना जीन और लगाम का एक मस्त शक्तिशाली घोड़ा और उस पर क़ाबू पाने को सचेष्ट एक दुर्धर्ष युवा का चित्र अंकित होता। उस पर तीन शब्द भी होते मुद्रित—साहस, शक्ति और साधना।

पटना कॉलेज के सामने एक खपरैल मकान में 'युवक' आश्रम खुला। 'युवक' वहीं से प्रकाशित होता। बेनीपुरी के साथ उस 'युवक' में बाबू गंगाशरण सिंह, पं. रामनन्दन मिश्र, अवधेश्वर प्रसाद सिंह और अम्बिकाकान्त सिंह आ जुटे। सभी देशभक्त, क्रान्तिकारी विचारों के समर्पित साधक! आज़ादी के लिए अहर्निश बेचैन युवक इस आश्रम में ही एकत्र होते और 'युवक' की पंक्ति-पंक्ति से आज़ादी और क्रान्ति की आवाज़ गूँजती। भौतिक सुख-समृद्धि की ऐषणाओं को त्याग, बड़ी कठिन परिस्थितियों

को झेलते 'युवक' को निकालते। यहाँ-वहाँ से चन्दा माँग कर उसे किसी क़दर 'डिस्पैच' करते। घर-घर युवकों के पास जाकर आज़ादी और नवजागरण का शंख फूंकते। कभी चना-चबेना पर गुज़र करते और कभी वह भी नसीब नहीं। पर बाहर से आनेवाले युवकों को कभी इसका एहसास नहीं होने देते। फ़ाकाकशी पर भी इन युवाओं की मस्ती झूमती ही रहती। ऐसे थे ये बेपरवाह, बेलौस, नितान्त निर्भीक ये युवा! किसी भी क़ीमत पर 'युवक' निकालने की तैयारी। पटना कॉलेज के सामने उस खपरैल मकान में 'सिर पर क़फ़न बाँधे' युवकों की वह मस्त टोली अपने पसीने और ख़ून से आज़ादी के युद्ध के दीप को अहर्निश जलाये रखती। इतिहास के इस तथ्य को आज के इतिहास-लेखकों ने कितनी निर्मम अनदेखी की है!

वस्तुतः 'युवक' का सम्पादन और संचालन बेनीपुरी की ओजस्विता और अटूट साहस की अग्नि-वीणा का दाहक प्रखर स्वर था। वे संघर्ष में आस्था रखते और उसी के अग्निपथ पर चलते भी। यह संघर्ष उनके अन्तर की कलाशक्ति को जाग्रत और आन्दोलित करता। उनकी कला, उनका राजनीतिक क्रान्तिकारी चरित्र संघर्ष से और भी उत्तरोत्तर निखरता ही गया। बेनीपुरी की दृष्टि से—"कला का पिता संघर्ष है। कला जैसी अनुपम सुन्दर सृष्टि निश्चिन्तता और आनन्द के परिवेश में नहीं होती। वह तो संघर्ष की आग में तपकर और भी शक्ति प्राप्त करती है। संघर्ष निष्ठुरतर तो होता है, किन्तु वही ठोस बनाता है, चमक देता है, काट करने की क्षमता देता है।"[12]

'युवक' में ही पहले-पहल बेनीपुरी ने 'समाजवाद' पर लेख लिखा। रासबिहारी बोस, यतीन्द्र मुकर्जी, जैसे क्रान्तिकारियों पर लेख निकले, मेरठ षड्यन्त्र केस के तमाम अभियुक्तों का सचित्र परिचय इसी में छपा। भगत सिंह की फ़ाँसी पर (23-3-31) बेनीपुरी ने सम्पादकीय लिखा, जिसके लिए छह महीने की सज़ा भुगतने का सौभाग्य उन्हें प्राप्त हुआ। युवक के सम्पादन के क्रम में बेनीपुरी युवाओं में उत्साह और उमंग, ख़िलाफ़त और बग़ावत का झण्डा अंग्रेज़ी सल्तनत के ख़िलाफ़ उठाये-उड़ाते ही रहे। ख़ुद विप्लव का शंखनाद करते और उस युग की युवापीढ़ी में आज़ादी के लिए आग सुलगाते। युवक आश्रम 'युवक' निकालने का ऑफ़िस मात्र नहीं था, अपितु बिहार की क्रान्तिकारी राजनीतिक चिन्तनधारा और प्रगतिशील साहित्य की रचना का आग्नेय स्रोत था।

जेलयात्रा—तप और साधना की मंज़िल!

'युवक' का 'विप्लव' अंक अभी बेनीपुरी 'डिस्पैच' भी नहीं कर पाए थे कि महात्मा गाँधी ने गुलामी के ख़िलाफ़ जंग का ऐलान कर दिया। बेनीपुरी ने पलक झपकते रातों-रात युवाओं, छात्रों को इकट्ठा किया। सुबह होते-होते पटना कॉलेज से मेडिकल कॉलेज तक छात्रों, युवाओं की भारी भीड़ हाथों में तिरंगा झण्डा लिये 'इन्क़लाब ज़िन्दाबाद' और 'महात्मा गाँधी की जय' का उद्घोष करती, गगनभेदी नारों से आकाश

भी थर्राता रहा। साइंस कॉलेज के सामने घुड़सवार पुलिस अड़ी थी, जुलूस को रोकने के लिए और उधर 'नमक क़ानून' तोड़नेवाले सरपर कफ़न बाँधे सत्याग्रहियों का जत्था इंच भर पीछे हटने को तैयार नहीं। यह महात्मा गाँधी के साथ चल पड़ा—आज़ादी की तलाश में, ब्रिटिश साम्राज्य के ख़िलाफ़।

बेनीपुरी सत्याग्रही जत्थे का नेतृत्व करते, नारे लगाते हाथ में राष्ट्रध्वज उड़ाते आगे बढ़ ही रहे थे कि पुलिस ने गिरफ़्तार कर लिया। गाँधी की अहिंसा और सत्याग्रह का क्या प्रभाव था! कैसी सहनशीलता सत्याग्रहियों में आ गयी थी कि लाठी-गोली के शिकार होकर भी मौन रहते। बेनीपुरी गिरफ़्तार होकर पटना कैम्प जेल में रखे गये। वह कैम्प जेल यातना और नरक का ही शिविर था। पर कुछ ही दिनों में 'बी' क्लास देकर हज़ारीबाग़ सेण्ट्रल जेल भेज दिए गये। ये छह महीने बेनीपुरी के जीवन के आनन-फानन में गुज़र गये। जेल में भी उन्हें पत्रकारिता प्रेरित करती। उन्होंने हज़ारीबाग़ जेल के पहले पड़ाव में 'क़ैदी' नाम की हस्तलिखित पत्रिका निकाली। वहाँ राजेन्द्र बाबू भी आ गये थे। उन्होंने भी 'प्रजा का हित' शीर्षक लेख 'क़ैदी' के लिए लिखा था। 'क़ैदी' के द्वारा वे राजनीतिक बंदियों में साहस और उत्साह आज़ादी के लिए उमंगें भरते। उड़ीसा से आये नवकृष्ण चौधरी, हरेकृष्ण महताब आदि बड़े-बड़े नेताओं को हिन्दी की शिक्षा भी देते। 1931 में अमर शहीद गणेश शंकर विद्यार्थी ने उन्हें अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का प्रचार-मन्त्री बनाया था। आपने तीस वर्ष की उम्र में छह महीनों की पहली जेलयात्रा को एक सार्थक शक्ति के रूप में अर्जित किया और तप के रूप में। बहुत से राजनीतिक बंदियों के लिए जेलजीवन सुखभोग की तलाश का एक पड़ाव था। बेनीपुरी की यह प्रथम जेलयात्रा तप और साधना की एक मंज़िल थी। वे एक ग़रीब किसान के अल्हड़ बेटे थे—उनकी दो चिन्ताएँ थीं—'युवक' पत्र की, पत्नी और दोनों बच्चों की, जिनका कोई पक्का इन्तज़ाम कर वे जेल न गये थे। 'युवक' को निकालने का दृढ़ संकल्प और परिवार से पुनर्मिलन की मीठी कामना लिये जब वे हज़ारीबाग़ जेल से मुक्त हो पटना पहुँचे तो पता लगा जेल की 'ज़ंजीरें' और 'दीवारें' उन्हें पुनः बुला रही हैं। बेनीपुरी को जेल से मुक्ति कहाँ?

जेल में समाजवाद की शिक्षा

पटना कैम्प जेल में डेढ़ वर्षों का यह प्रवास बेनीपुरी के क्रान्तिकारी राजनीतिक चिन्तन के प्रसार, बिहार सोशलिस्ट पार्टी तथा किसान आन्दोलन के बिहार में मज़बूत संगठन बनने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

यहीं पर बेनीपुरी ने कम्युनिस्ट मैनिफ़ेस्टो का हिन्दी अनुवाद किया। यहीं पर अपनी पहली मार्मिक कहानी—'कहीं धूप, कहीं छाया' लिखी और यहीं पर बेनीपुरी ने 'चन्द्रगुप्त' जैसा देश-भक्तिभावपूर्ण नाटक लिखा, जिसे कैम्प जेल के राजबन्दियों ने बड़ी लगन से मंच पर प्रस्तुत किया। वहीं बिहार काँग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के भावी संगठन का

बीज वपन हुआ।[13] अगले पच्चीस वर्षों तक बेनीपुरी जिन राजनीतिक विचारधाराओं के अग्रदूत बने रहे, उनका अरुणोदय यहीं हुआ। उनके व्यक्तित्व को एक वृहत्तर आकाश मिला। उनके भावी जीवन की पृष्ठभूमि यहीं तैयार हुई। इस जेल-जीवन में तपकर बेनीपुरी का राजनीतिक क़द और भी ऊँचे आसमान को छूने लगा। वस्तुतः इस जीवन-पथ पर बेनीपुरी का क़द भी बढ़ा सही दिशा में, कठोर क़दम भी।

1934 का भूकम्प, महात्मा गाँधी का शुभागमन

बेनीपुरी कैम्प जेल से 1933 में मई महीने में छूटे तो उनके विचारों का ज्वलन्त प्रतीक 'युवक' अंग्रेज़ी सल्तनत द्वारा जमानत और ज़ब्ती के बोझ से दबकर जर्जर हो चुका था। बेनीपुरी पर आर्थिक बोझ का दबाव कुछ इतना था कि 'युवक' से भावनात्मक लगाव होने के बावजूद उसमें पुनः प्राण फूँकना सम्भव नहीं था। समाजवादी चिन्तन और किसान आन्दोलन की भावना से ओतप्रोत बेनीपुरी जब बाहर निकले और अपने विचारों की अभिव्यक्ति के माध्यम की तलाश में बेचैन थे कि किसानों के एकछत्र नेता स्वामी सहजानन्द सरस्वती ने 'लोकसंग्रह' (मुज़फ़्फ़रपुर) साप्ताहिक के प्रधान सम्पादक होने का आमन्त्रण दिया। अपने विचारों से किसान आन्दोलन को बेनीपुरी ने गति और शक्ति दी।[14] उस पत्र को अपने क्रान्तिकारी विचारों के अनुरूप आकार दे ही रहे थे कि 14 जनवरी 34 को बिहार में प्रलयंकारी भूकम्प आया। मुज़फ़्फ़रपुर एक झटके में मलवों का ढेर हो गया। उसी भूकम्प में प्रेस भी नष्ट हो गया। अब वे क्या करें। समय की माँग थी—*दुखी जनों की पीड़ा को सहलाओ।* वे भूकम्प पीड़ितों की सेवा में जी जान से जुट गये। बेनीपुर, जनाढ़ जैसे छोटे गाँवों में भी बेनीपुरी महात्मा गाँधी को ले गये। उनके वहाँ जाने मात्र से भरथुआ चौर का वर्षों से जमा जल नयी बनी नहर से वाग्मती नदी में जा गिरा और इन गाँवों में फ़सल लहलहा उठी। इसका श्रेय मिला बेनीपुरी को कि महात्मा गाँधी को न लाते तो क्यों इन गाँवों में फ़सल की हरियाली यों लहलहाती!

'कर्मवीर' से 'योगी' तक

भूकम्प के रिलीफ़ का काम थम रहा था। अब बेनीपुरी आज़ादी के अपराजेय योद्धा के रूप में क्रान्ति के गीत गा सकें, जीवन के सही माध्यम की तलाश कर सकें और तीन बच्चों के साथ रानी के भरण-पोषण का दायित्व भी वे पूरा कर सकें, यह कैसे होता! बेनीपुरी अल्हड़, सदा मस्त, अपने से बेपरवाह, चिर युवा और चिर विद्रोही ही बने रहे। इसलिए जब वे जेल से बाहर होते तो एकदम व्यग्र हो जाते, काश! उन्हीं दिनों जयप्रकाश के सहयोग से पं. माखनलाल चतुर्वेदी 'भारतीय आत्मा' जैसे क्रान्तिकारी विचारों के 'समान धर्मा' देशभक्त सम्पादक के साथ साप्ताहिक 'कर्मवीर' (खंडवा) में सहयोगी सम्पादक के रूप में छह महीने तक मनोयोगपूर्वक कार्य करने का अवसर

मिला। वहाँ चतुर्वेदीजी का सहज स्नेह भी प्राप्त हुआ और वहाँ के राजनीतिक और साहित्यिक जीवन में स्वीकृति और ख्याति भी मिली। पर एकबार घर लौटे तो फिर अपनी जन्मभूमि बिहार का मोह उनके पाँवों से लिपट गया। जीविका की भी तलाश करनी ही थी। वे मुज़फ़्फ़रपुर से पटना जंक्शन पर आये कलकत्ता जाने के लिए। उन दिनों कलकत्ता हिन्दी पत्रकारिता और प्रकाशन का गढ़ था। सोचा–कहीं तो ठौर मिल सके!

पर यह क्या? वहीं (स्टेशन पर) उस समय गोरिया कोठी (सिवान ज़िला) के प्रसिद्ध स्वतन्त्रता-सेनानी (स्व.) नारायण बाबू ने पूछा–कहाँ जा रहे हो बेनीपुरी? उन्होंने कहा–जा रहा हूँ कलकत्ता अपनी क़लम और कर्म की तलाश में। नारायण बाबू ने हाथ थामते हुए कहा–"मैं 'योगी' नाम का राष्ट्रीय पत्र निकालने जा रहा हूँ। धन और तन मेरा, क़लम और मन की उमंग तुम्हारी–युवाओं और किसानों की।" बेनीपुरी ने जीवन की तलाश में बिहार को छोड़ना चाहा, पर उसकी मिट्टी ने फिर थाम ही तो लिया हाथ। 'योगी' के प्रथम सम्पादक के रूप में उन्होंने अपनी सम्पादन-क्षमता को समृद्ध किया और उसे किसानों का मुखपत्र बना दिया। वहीं राहुल जी, स्वामी सहजानन्द, जयप्रकाश जी, बसावन सिंह आदि युवा नेता किसानों के संगठन और समाजवाद के प्रसार के लिए बैठकें करते। 'योगी' का कार्यालय 'युवक' की तरह किसानों और युवकों का, अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ बग़ावत का विस्फोटक केन्द्र हो गया। बेनीपुरी ने उन्हीं दिनों 'योगी' का 1936 में 'शहीद अंक' निकाला। इसमें राजेन्द्र बाबू का सन्देश और अलग से लेख भी था। क्रान्तिकारी विचारों से ओतप्रोत इस अंक के लिए सरकार ने पाँच हज़ार रुपये की जमानत माँगी। संचालक इतनी बड़ी रक़म देने को तैयार न थे। जयप्रकाश ने उसकी भरपाई करनी चाही पर इस शर्त पर कि वह किसानों और प्रगतिशील विचारों ही का मुखपत्र हो। संचालक इसके लिए तैयार न हुए। निदान, किसान आन्दोलन के अग्रणी बेनीपुरी 'योगी' से अलग हो गये।

किसान आन्दोलन : ज़मींदारी प्रथा का उन्मूलन

इस बीच बेनीपुरी किसान आन्दोलन, समाजवादी चिन्तन के प्रसार और आज़ादी की लड़ाई को अपने भाषणों, लेखों से धारदार बनाते ही रहे। इसी अवधि में बीहपुर (भागलपुर) में बिहार प्रान्तीय किसान सम्मेलन जयप्रकाश की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। उसमें बेनीपुरी ने ज़मींदारी प्रथा के नाश का प्रस्ताव रखा और उसे पारित करवाया। उनका उत्साह बढ़ता ही गया। 1937 में फ़ैजपुर कांग्रेस में भी यह प्रस्ताव रखा और आन्दोलन कर पास करवाया। बेनीपुरी का अटल विश्वास था–"जब तक ज़मींदारी प्रथा का नाश न होगा, तब तक किसानों का शोषण और अत्याचार जारी ही रहेगा।" शोषणमुक्त समाज की पहली शर्त बेनीपुरी की दृष्टि में थी–ज़मींदारी प्रथा का नाश।

जहाँ भी अवसर मिलता वे ज़मींदारी प्रथा पर प्रहार करने से न चूकते। उन्होंने स्वयं कहा है—ज़मींदारी प्रथा के नाश का प्रस्ताव रखना और पास करवाना मेरा पेशा ही बन गया।[15]

जेल में जयप्रकाश और बेनीपुरी

बिहार विधानसभा के 1937 के आम चुनाव में काँग्रेस के भारी मतों से विजयी होने के बावजूद सत्ता की नकेल गवर्नर के हाथों में थी। इसलिए काँग्रेस ने पदग्रहण करने से इनकार किया तो ज़मींदारों के प्रतिनिधि यूनुस पहली अप्रैल 1937 को शपथ ग्रहण करनेवाले थे। बेनीपुरी और जयप्रकाश ने विरोध स्वरूप पटना में जुलूस और हड़ताल की घोषणा कर दी। सरकार ने दोनों पर एक सौ चौवालीस की नोटिस तामील की। रातों-रात दोनों ही मित्रों और उनके समर्थकों ने हड़ताल का सफल आयोजन किया और हज़ारों लोगों ने जुलूस में शामिल होकर नये विधान की धज्जियाँ उड़ा दीं। नया विधान जैसे पनाह माँग रहा था, पटना की सड़कों पर।

बेनीपुरी और जयप्रकाश दोनों ही गिरफ़्तार कर हज़ारीबाग़ सेण्ट्रल जेल भेज दिये गये। दोनों ही नेता तीन महीने साथ रहे और एक-दूसरे के बहुत क़रीब आये। विचार, आत्मीयता, भाईचारा और सहानुभूति के तारों ने एक-दूसरे को अभिन्न सखा बना दिया। बाद के वर्षों में एक-दूसरे के अंतरंग मित्र और प्रेरक बन्धु बने रहे। इसी अल्पकालीन जेल-प्रवास में बेनीपुरी का तब मँझला पुत्र 'गाँधी' सहसा चल बसा। जब यह शोकप्रद ख़बर आयी तो जयप्रकाश ने बड़े ही सान्त्वना भरे शब्दों में यह शोक संवाद दिया और निरन्तर आँसुओं में डूबे बेनीपुरी को वे ढाढ़स भी बँधाते। कई दिनों तक जयप्रकाश बेनीपुरी के साथ बने रहे। पता नहीं भावुक, कलाकार बेनीपुरी मर्माहत हो क्या कर लें! इस अचिन्तित, आकस्मिक पुत्र-शोक ने बेनीपुरी को बेसुध और आत्मविस्मृत-सा बना दिया था। अन्ततः उनका सारा उभरता शोक-समुद्र उनकी क़लम से अक्षरों के रूप में—'गाँधी नामा' व्यथा-गाथा का कालजयी साहित्य ही बन गया। उन्हीं के शब्दों में—"क़लम केवल प्रहार ही नहीं करती, वह ढाल भी बनती है"।[16]

'जनता' की विजय-यात्रा

बेनीपुरी तीन महीने की सज़ा पूरी कर हज़ारीबाग़ से पटना लौटे। उनका मँझला पुत्र चल बसा था और जयप्रकाश अपने प्यारे पिता को खो चुके थे। दोनों का यह शोक भी बहुत देर तक उन्हें अपने मिशन को पूरा करने से रोक न सका। अल्पमत यूनुस मन्त्रिमण्डल के इस्तीफ़े के बाद श्रीबाबू की काँग्रेसी सरकार बनी। चारों ओर हर्ष और उल्लास का अद्भुत वातावरण। जयप्रकाश और बेनीपुरी का एक सुनहला जेल-प्रवास में अंकुरित हुआ था—एक स्वतन्त्र, आत्मनिर्भर साप्ताहिक पत्र निकालने का
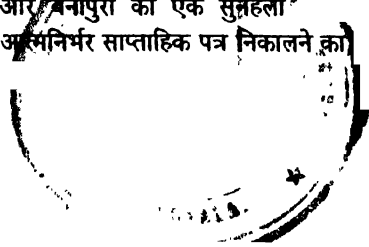
जिसमें समाजवादी विचारों, किसानों के हितों और प्रगतिशील साहित्य की रचना हो। इसके लिए आचार्य नरेन्द्रदेव, माखनलाल चतुर्वेदी, यूसुफ मेहरअली, सीताराम सेक्सरिया और बेनीपुरी के नाम से अपील निकाली गयी। उस समय काँग्रेस के कोषाध्यक्ष महान् दानी 'आज' (काशी) के संस्थापक बाबू शिवप्रसाद गुप्त ने सबसे पहले तीन सौ रुपये की दान राशि भेजी थी। जयप्रकाश और बेनीपुरी के अथक प्रयास से साप्ताहिक 'जनता' का प्रथम अंक विजयादशमी 15.10.1937 को प्रकाशित हुआ। मुखपृष्ठ पर युवकों के हृदयहार काँग्रेस के अध्यक्ष जवाहरलाल नेहरू का प्रेरक सन्देश और भीतर के पृष्ठों में राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' की 'हाहाकार' शीर्षक क्रान्तिकारी कविता! ऐसा प्रेरक और विचारोत्तेजक वह अंक निकला कि पाठकों की माँग पर उसका दूसरा संस्करण निकाला गया। दूसरे अंक के सम्पादकीय का शीर्षक था 'जनता की विजय-यात्रा'। उसके अक्षर-अक्षर से अग्निवाण की ज्वाला फूटती थी। आज़ादी के दीवानों, शोषित किसानों और युवाओं के लिए बेनीपुरी की विद्रोही आत्मा का स्थायी राग यों प्रतिध्वनित हुआ—

"यह जनता का युग है। जमातों, वर्गों का युग तो खतम हो चला या वह अपनी आख़िरी साँसें गिन रहा है। दुनिया के कोने-कोने में जन-आन्दोलन की धूम है। सदियों, सहस्राब्दियों तक सोई जनता उठ बैठी है। वह उठ बैठी, खड़ी हुई और विजय के लिए प्रस्थान कर चुकी। उसके तुमुल नाद से आकाश थर्रा रहा है।

'विजय' को पदार्पण करनेवाली यह 'जनता' जनता की उस विजय-यात्रा के लिए सच्चे सैनिक पैदा करे, उन्हें युद्ध-शिक्षा दें, उनकी मोर्चाबन्दी करे और अन्त में उस विजयिनी पताका के रूप में फहरे, उसकी विजय-वैजयन्ती बने, हमारी कामना तो यह है।"[17]

आज सड़सठ वर्षों बाद उस 'जनता' साप्ताहिक की फाइलों की ओर देखता हूँ तो उस समय के उसके क्रान्तिकारी चरित्र का परिचय मिलता है। तब उसके लेखकों में जयप्रकाश, महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, स्वामी सहजानन्द सरस्वती, आचार्य नरेन्द्रदेव, अच्युत पटवर्द्धन, अशोक मेहता, प्रो. रंगा होते। 'जनता' उस समय के प्रगतिशील चिन्तन का ज्वलन्त प्रामाणिक दस्तावेज़ है।

1937-40 की अवधि में 'जनता' के माध्यम से उस समय के तमाम आन्दोलनों को सुलगाते ही रहे बेनीपुरी। अपने आन्दोलनकारी चरित्र से उस समय 'जनता' को भी आन्दोलनों का प्रतीक बना दिया उन्होंने।

काँग्रेसी सरकार के शासन सूत्र हाथ में लेते ही बेनीपुरी ने अमर शहीद भगत सिंह के वीर साथी वटुकेश्वर दत्त, कमलनाथ तिवारी और योगेन्द्र शुक्ल आदि की मुक्ति के लिए जबर्दस्त आन्दोलन किया और जनता का 'राजबन्दी' अंक निकाला। आन्दोलन इतना उग्र और प्रभावी हुआ कि बिहार की काँग्रेसी सरकार को त्यागपत्र देना पड़ा। तब कहीं जाकर लम्बी सजा भुगत रहे देशभक्त राजबन्दी छोड़े गये।

'जनता' देश की सीमा के पार नेपाल में भी!

आरम्भिक तीन-चार वर्षों तक बेनीपुरी अपने बहुमुखी राष्ट्रीय और समाजवादी चिन्तन के अनुरूप 'जनता' को आन्दोलनों का पत्र ही नहीं, गुलामी, आर्थिक विषमता, शोषण और उत्पीड़न के ख़िलाफ़ जनता की विजयिनी चिरविद्रोही ध्वजा बनाये रहे। बेनीपुरी की आन्दोलनात्मक प्रवृत्ति उन्हें भारत की सीमा के पार नेपाल तक ले गयी। राणाओं के अत्याचार और शोषण के ख़िलाफ़ 'जनता' में निरन्तर समाचारों, लेखों को प्रमुखता प्रदान की उन्होंने। नेपाल सरकार इस अख़बारी युद्ध से इतने तनाव में आ गयी कि 'जनता' के एक लेख की प्रतिलिपि रखने के कारण एक युवक गंगालाल शर्मा को दिनभर कोड़े लगाए गये और फिर उन्हें गोलियों से उड़ा दिया गया। दूसरे जनता के एक संवाददाता दशरथचन्द (छद्मनाम शिवानन्द) को गोलियों से छलनी कर दिया गया।[18] बेनीपुरी किन कठिनाइयों में 'जनता' की क्रान्तिकारी लहर को गति और शक्ति देते रहे, आज के पत्रकार इसकी कल्पना कर ही नहीं सकते। कहीं से काग़ज़ का जुगाड़ किया, कहीं से रोशनाई का, किसी तरह 'जनता' निकली तो डाक ख़र्च के लिए पैसे नहीं। (मुझे याद है, पृष्ठ 50-58, बेनीपुरी ग्रन्थावली, भाग-4)

1942 के आन्दोलन के पूर्व बेनीपुरी 1939-40 में जेलयात्रा कर चुके थे। मुज़फ़्फ़रपुर ज़िले में स्वाधीनता के संघर्ष की आग में कूदनेवालों में उनका प्रमुख स्थान था। व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन में जेल जानेवालों में मुज़फ़्फ़रपुर ज़िले के स्वतन्त्रता सेनानियों में बेनीपुरी प्रमुख थे।[19] इन जटिल परिस्थितियों में जनता का उद्घोष बेनीपुरी करते ही रहे। तभी युद्ध छिड़ गया। काँग्रेस मिनिस्ट्री के हटते ही सरकार ने 'जनता' पर धावा बोल दिया। पाँच हज़ार की जमानत माँग कर जनता को बन्द कर दिया गया। एक युद्ध विरोधी लेख (न भाई, न पाई) और नेपाली समाचारों को छापने के कारण बेनीपुरी को जेल में डाल दिया गया।

भारत छोड़ो आन्दोलन और बेनीपुरी :

1940 से 1942 के मध्य कई राजनीतिक जुर्मों में वे जेल गये। अमवारी छपरा के किसान आन्दोलन के फलस्वरूप राहुल जी पर लाठी-प्रहार और जेल की सज़ा के ख़िलाफ़ 'जनता' में सदैव लिखने, युद्ध में सहायता-विरोधी तथा नेपाल की राजशाही के अन्याय और अत्याचार के विरोध में लिखे गये लेखों के कारण बेनीपुरी बार-बार जेलों में गये और अन्ततः 'भारत छोड़ो आन्दोलन' के पूर्व ही हज़ारीबाग़ जेल में नज़रबन्द कर दिये गये तो 1945 तक वहीं रहे। यों बेनीपुरी 'भारत छोड़ो आन्दोलन' मे पूर्व सीतामढ़ी, दरभंगा और मधुबनी जेलों की यात्रा करते अपनी योजना के अनुसार हज़ारीबाग़ जेल में थे। जयप्रकाश वहाँ देवली कैम्प से पहले ही आ चुके थे। "7 अगस्त 1942 से ही हमारे शरीर हज़ारीबाग़ जेल में थे। और आँखें बम्बई की ओर लगी थीं।" (*ज़ंजीरें और दीवारें* : बेनीपुरी, पृ. 200)

लगभग छह वर्षों के लम्बे जेल-प्रवास ने बेनीपुरी के अन्तर के योद्धा को आगे के संघर्षों के लिए और भी कठोरतर बना दिया। 42 में देश के अधिकांश नेता जेलों में थे और क्रान्तिकारी विचारों के कुछ नेता, अच्युत पटवर्द्धन, अरुणा आसफ़ अली, लोहिया, बसावन सिंह आदि भूमिगत हो गये थे और गुप्त संगठनों के माध्यम से आज़ादी की पवित्र ज्वाला को सुलगाते ही रहे। इस रहस्य का पता तब चला जब पं. रामनन्दन मिश्र को कटक में गिरफ़्तार कर हज़ारीबाग़ जेल भेजा गया। फिर क्या था, हज़ारीबाग़ जेल के दुःसाहसी समाजवादी देशभक्तों के हृदय में वह ज्वाला आज़ादी की पूरे वेग से लहलहा उठी। 9 अगस्त 1942 को 'भारत छोड़ो अभियान' के ख़िलाफ़ अंग्रेज़ी सल्तनत ने तमाम देशभक्तों पर भीषण प्रहार किया, पर तीन महीने के बाद 9 नवम्बर 42 की दीपावली की हँसी-ख़ुशी की छाया में, जान हथेली पर लेकर हज़ारीबाग़ सेण्ट्रल जेल की अलंघ्य काली दीवारों को लाँघ गये वीर बलिदानी देशभक्त जयप्रकाश, रामनन्दन मिश्र, योगेन्द्र शुक्ल, सूरजनारायण सिंह और गुलाबचन्द गुप्त। पैसे, भोजन की पोटली और वस्त्र जेल में ही गिर पड़े। अमावस की उस घनी काली अँधेरी रात में उन सघन जंगलों और हिंसक पशुओं, ऊँची-नीची पहाड़ी टीलों के बीच रास्ता बनाते चल पड़े। बाहर चाहे जितना अन्धकार रहा हो पर आज़ादी के इन दीवानों के दिलों में कितनी रोशनी और बेचैनी थी! उसी सहारे चलते रहे, चलते ही रहे वे।

हज़ारीबाग़ सेण्ट्रल जेल में बेनीपुरी थाल में बयालीस दीपों को जला इस वार्ड से उस वार्ड ख़ुशी की फुलझड़ियाँ बाँट रहे थे। पर मन में एक पछतावा भी था, काश! उन्हें मूर्च्छा आने की बीमारी न होती तो वे भी आज़ादी के उन वीर योद्धाओं में होते। दीपावली की रात ढलती रही और जयप्रकाश के कमरे में स्व. कृष्णवल्लभ सहाय और स्व. बाबू शार्ङ्गधर सिंह नाटकीय ढंग से ताश खेलते रहे छद्म भाव से।

सुबह होने के कुछ देर बाद जब जयप्रकाश की खोज हुई फिर धीरे-धीरे अन्य पाँचों की भी, तो जेल अधिकारियों की चिन्ता और परेशानी का अन्त नहीं। रहस्य-भेद होने पर बेनीपुरी का डिवीजन तोड़कर दण्डस्वरूप गया सेण्ट्रल जेल तबादला कर दिया गया। पर कुछ ही महीनों बाद पुनः हज़ारीबाग़ जेल में थे।

जेल में प्राणवन्त साहित्य का सृजन, बाह्य आन्दोलन

यहीं इसी आम्रतरु की छाया में बेनीपुरी-साहित्य ही नहीं, हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ नाटकों में एक 'अम्बपाली' की रचना हुई। यहीं *माटी की मूरतें* जैसा भारतीय भाषाओं का अनूठा रेखाचित्र बेनीपुरी ने उरेहा। बुद्धकालीन *अम्बपाली* के माध्यम से बेनीपुरी ने भारत की स्वाधीन चेतना, मानवीय सौन्दर्य-भावना, करुणा और आत्मसंघर्ष को वाणी दी तो *माटी की मूरतें* के माध्यम से न केवल बिहार के ग्राम्य जीवन को ही अत्यन्त सजीव रूप में उकेरा, बल्कि उन्होंने बुधिया, बालगोबिन भगत, बलदेव सिंह, सुभान ख़ाँ

आदि जीवन्त रेखाचित्रों को चुनौती के रूप में प्रस्तुत किया और चलते-फिरते प्राणवन्त मनुष्यों के ऐसे शब्दचित्र उरेहे जैसे कि कोई जादूगर शून्य से मुट्ठी में पकड़-पकड़ कर इन सप्राण जीवों को ज़मीन पर उतारे और हम विस्मय-विमुग्ध हो कि ये कहाँ से आये पर तुरन्त बाद अपनी ही मूढ़ता पर हँसे कि ये तो हमारे ही बीच थे और सँभलकर अपने आप से पूछें—क्या ये सचमुच हमारे बीच के हैं।[20]

स्वतन्त्रता आन्दोलन के उस युग में बेनीपुरी सोलहों आने आपादमस्तक आन्दोलन ही थे। उनके लिए साहित्य-लेखन भी आन्दोलन था और एक अपील भी बेहतर बदलाव के लिए। वे उस आन्दोलन को जेल में, जेल से बाहर भी, देश की पराधीनता और आज़ादी के बाद भी चलाते ही रहे अविराम!

हज़ारीबाग़ जेल के लम्बे प्रवास ने चिरविद्रोही बेनीपुरी की क्रान्ति-चेतना को धारदार ही बनाया भोथरा नहीं। वे आन्दोलन को क्रान्ति की अटूट शृंखला मानकर ही जीवन भर उसी राह चलते रहे। आन्दोलन परिवर्तन के लिए होता है और क्रान्ति ख़ुद को बदलकर दूसरों को भी बदलाव के लिए प्रेरित करती है। बेनीपुरी ने अपने चिन्तन के इसी बिन्दु को बाद में लिखित अपने विचारप्रधान नाटक की मुख्य पात्रा 'संघमित्रा' के मुँह से कहलवाया है—"बदला हुआ आदमी संसार को भी बदल देता है, हम बदल गये हैं, हम संसार को बदलने चले हैं।"[21]

पुण्य का उपचय

बेनीपुरी और उस युग के अन्य स्वातन्त्र्य योद्धाओं में एक मौलिक अन्तर है कि बेनीपुरी चिन्तन, लेखन और कर्म तीनों स्तरों पर न केवल आज़ादी के लिए ही, अपितु पूरे समाज की बेहतरी के लिए जुटे ही रहे, आज़ादी के पहले और बाद भी। जेल-प्रवास काल में उन्होंने अपनी सौतेली माँ और पिता-तुल्य मामा को भी खोया। इस प्रवास के अन्तिम महीनों में पत्नी मिलने आयी। रोग, दुर्बलता से एकदम विषण्ण, रक्तहीन उनके चेहरे को देखकर बेनीपुरी ने कहा घबराओ मत, मैं शीघ्र ही जेल से बाहर आऊँगा। "कुछ हमारे साथी माफ़ीनामा लगाकर बाहर जा रहे हैं" यह सुनते ही उनकी पत्नी की आँखों से आँसू घर-घर गिरने लगे। वे तमककर बोलीं—"ऐसी बात मत कीजिए। मैं ही अकेले विपदा में नहीं हूँ। कितनी औरतों के पति आपकी तरह जेलों में हैं जो सबकी हालत होगी, मेरी भी होगी। ज़िन्दगी भर का पुण्य आप इस तरह बर्बाद करेंगे? पाप की बात सोचनी भी नहीं चाहिए। मैंने हँसकर उसे बताना चाहा कि मैंने यह बात हँसी में कही थी, किन्तु वह रोती रही।"[22]

बेनीपुरी जेल में तप रहे थे और उनकी निरक्षर रानी भी उनकी स्वाधीन चेतना से जुड़ी घर में उसी तप के प्रति समर्पित थी, एक वीरहृदय नारी! बस उनकी यही चिन्ता थी कि उनके पति बेनीपुरी का चरित्र निष्कलंक, पवित्र और निर्दोष ही रहे। चाहे इसके लिए बड़ी से बड़ी सज़ा क्यों न भुगतनी पड़े।

बेनीपुरी ने अपने साहित्यिक जीवन का आरम्भ कविता से ही किया था और लम्बे जेल प्रवास ने वर्षों से सोये कवि को फिर जगा दिया। रवीन्द्रनाथ की सौ श्रेष्ठ कविताओं का अनुवाद किया। शैली, कीट्स और बायरन की श्रेष्ठ कविताओं के अनुवाद का नाम रखा 'टूलिप्स', खुद कविताएँ लिखीं, नाम रखा—*नया आदमी*। (बेनीपुरी ग्रन्थावली भाग-1 संकलित पृष्ठ 399-475)

साहित्य-सृजन, आन्दोलन, सामाजिक परिवर्तन का स्वप्न देखते-देखते यह लम्बा जेल प्रवास छू मन्तर हो गया। पत्नी की गम्भीर अस्वस्थता के कारण गवर्नर के विशेष आदेश के तहत जेल से पेरोल पर छूटे तो विदा लेते हुए महान् देशभक्त (स्व.) जगलाल चौधरी से मिलने गये। उन्होंने रुँधे हुए गले से कहा—"बेनीपुरी, आप थे यहाँ, तो ये पत्थर की दीवारें आपके अट्टहास से हिलती-सी मालूम पड़ती थीं। आज से ये पत्थर सचमुच जड़ बन जाएँगी। बेनीपुरी अवाक् कि यह तो कविता ही फूट पड़ी।"

'ग्रामदेवता' की वापसी

जेल से बेनीपुरी चले तो उन पत्थर की दीवारों और गेट पर लटकी फ़ौलादी ज़ंजीरों की ओर हसरत भरी निगाहें टिकी ही रहीं। वह आम का बिरवा, जिसकी छाया में समाज की बेहतरी के लिए आन्दोलन के सपने पालते ही रहे। उसकी डाल से झर रहे पीले पत्ते वियोगाश्रु की तरह झरते रहे, कल से कौन साधक उसकी छाया में क़लम से शाश्वत जीवन कविता रचेगा, अब का बिछुड़ा वह फिर कब मिलेगा?

जिन ग्रन्थ-रत्नों को बेनीपुरी जेल में लाये, वे साथ थे और साथ में थी ढाई हज़ार पृष्ठों की अपने ग्रन्थ-रत्नों की, क्रान्ति और आन्दोलन की अग्निवीणा-सी पाण्डुलिपि। यही अक्षय उपार्जित अक्षर-से सम्पदा जेल से वे बाहर आये। पुनः आन्दोलन की राह पर ही सतत चलते रहने का दृढ़ संकल्प लिये।

हज़ारीबाग़ से यात्रा करते जब घर के निकट वे बेदौल पहुँचे तो भारी भीड़ ने घेर लिया। यहाँ बेनीपुरी ने आश्रम खोला था। यहीं अखिल भारतीय किसान-सम्मेलन का आयोजन उन्होंने किया था जो यूसुफ़ मेहर अली की अध्यक्षता में 1941 में सम्पन्न हुआ था। बेनीपुरी सीतामढ़ी में पहले ही गिरफ़्तार कर लिए गये थे। बेदौल से झटकते हुए जब बेनीपुर के सीवान पर पहुँचे बेनीपुरी, तो देखा बच्चे, जवान और बूढ़े भी धाप देते, उछलते-कूदते चले आ रहे हैं दर्शन करने अपने इस ग्रामदेवता का। कितना उल्लास और हुलास चमक रहा है इनके व्यथित, शोषित मुखरों पर, आशा और आह्लाद की कैसी किरणें फूट रही हैं, वर्षों के जेलवास के बाद अपने गाँव के 'राम' को फिर से देखकर।

जीवन का उत्तरायण

बेनीपुरी का उत्तराकालीन (1946-68) बाईस वर्षों के जीवन का विश्लेषण करने

पर हर्ष, गौरवपूर्ण अनुभूति, गहरे विषाद और करुणा के अन्तर्विरोधी भावों से हम एकदम ओतप्रोत हो जाते हैं। लम्बे जेल-प्रवास में उन्होंने स्वतन्त्र भारत के मज़दूर-किसानों, छात्रों और युवाओं—तमाम जनता की सामाजिक-आर्थिक बेहतरी और सांस्कृतिक समृद्धि का स्वप्न ही नहीं पाला, अपितु स्वाधीनता के पहले और बाद के तमाम लम्बे वर्षों में एक व्यापक आन्दोलन के प्रति सतत समर्पित, अपने को उत्सर्ग करते हम उन्हें पाते हैं। यही उनके जीवन की सहज प्रकृति, उनके चरित्र की नैसर्गिक रूपाभा रही है। जिस आदर्श को अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया, उसे पूरा करने के लिए प्राणपन से वे जुट जाते और हर स्तर पर उसके लिए आन्दोलन भी करते।

बेनीपुरी की नयी दुनिया का सपना

बेनीपुरी का सोच था—देश की आज़ादी के बाद उन जैसे समाजवादियों को समाज की खुशहाली, किसान मज़दूरों के शोषण और उत्पीड़न का अन्त करने के लिए सतत संघर्ष करते ही रहना है। रोटी, कपड़ा और मकान की मूल आवश्यकताओं के सम्पन्न होने के बावजूद मनुष्य के अन्तर में एक और चेतना है, जो केवल भौतिक सुखसाधनों की सम्पन्नता से ही शान्त नहीं हो पाती। हम भोग कितना भी करें, हमारे जीवन में सुख-साधनों की प्रचुरता का अम्बार ही क्यों न लग जाए, पर तृष्णा की ज्वाला और भी धधकती ही जाती है। इसलिए बेनीपुरी का स्पष्ट और एक नया प्रखर चिन्तन था—"सन्तुलित जीवन का, भोगों के दमन का ही नहीं, भोग वृत्तियों के उपशमन और उन्नयन का। मनुष्य की अन्तर्वृत्तियों का संस्कार और परिष्कार, सौन्दर्यवृत्ति का, कलाप्रवृत्ति का चेतना में उद्‌बोधन कि वह 'रावण' की तरह दसों मुख से भोग-वृत्ति, राक्षसी प्रवृत्ति-से न खुद जले न दूसरों को जलाए। जीवन की धारा को मोड़ दे कला प्रवृत्तियों के उन्नयन की ओर। वह लोक-कल्याण, परस्पर प्रेम, सहानुभूति, संवेदना के रागात्मक सूत्रों के संस्पर्श से उसके प्राणों में आह्लाद की, आनन्द की झंकार गूँजे। कला का सौन्दर्यबोध केवल शहरों में ही क़ैद न हो। शिक्षा, संगीत, नृत्य, नाट्य, लोक-जीवन की सुकुमार प्रवृत्तियाँ युग-युग से उपेक्षित वंचित जनता के जीवन को मधुरलय से तरंगित करें। जीवन कविता बन जाए। वह भौतिक सुखों के लिए ही न तड़पे, अपितु आन्तरिक आनन्द वृत्ति से आप्लावित हो।" यह उनके जीवन के बाद के वर्षों का सपना ही नहीं, एक जीवन सत्य था, जिसके लिए वे संघर्षरत रहे आजीवन।

गेहूँ और गुलाब

इस अमृतधर्मी चिन्तन को बेनीपुरी ने आन्दोलन का एक रूप दिया, नाम रखा—'गेहूँ और गुलाब'। वे बार-बार इस बात पर ज़ोर देते। उनका अटल विश्वास था—"यह जो मैं

अपने अनेक सहधर्मियों और सहकर्मियों के साथ दिन-रात अक्षरों में अक्षर जोड़े जा रहा हूँ, वह उन मिट्टी के घरौंदों से, पत्थरों के प्रासादों से, फौलादी कलपुर्जों से भी—जिन्हें राजनीति आज गढ़ रही है, कहीं अधिक टिकाऊ और जीवनप्रद सिद्ध होंगे। हमारे ये अक्षर एक न एक दिन आत्मा की अमरता का, निर्द्वन्द्वता का, मुक्तता का सन्देश देकर रहेंगे, एक नयी दुनिया बसाकर रहेंगे। वह नई दुनिया, जिसमें नग्नता, क्षुधा, कुरूपता, क्षुद्रता, अशुचिता का नाम नहीं रहेगा। जहाँ ऐश्वर्य, शौर्य और सौन्दर्य, ज्ञान और गान चारों ओर लहराते रहेंगे, वह दिन शीघ्र आवे, आकर ही रहेगा।"[23]

बेनीपुरी स्वामी विवेकानन्द की तरह अपने देश की युवा शक्ति के प्रति बहुत ही आस्थावान् और आशावान् थे। उपर्युक्त जीवन्त पंक्तियों के लिखने से पाँच-छह व्रर्ष पूर्व *गेहूँ और गुलाब* (1950) की प्रकल्पना को पुस्तक का रूप देते हुए यों लिखा—"यह पुस्तक है, आन्दोलन भी। यह हुई पुस्तक। और आन्दोलन भी, जो हमें भौतिकता की अन्धगुफ़ा से उठाकर सांस्कृतिक धरातल की ओर ले जाए। जो संघर्ष के बीच भी हमें सौन्दर्य देखने की दृष्टि दे।"[24]

साहित्य बनाम राजनीति

मेरी दृष्टि से हज़ारीबाग़ जेल 1940 से लेकर 1959 की 31 दिसम्बर तक उनके जीवन के वर्ष 'गेहूँ और गुलाब' के वर्ष थे। उन्होंने अपने चिन्तन, कल्पना और सपने के अनुरूप केवल राजनीतिक क्रिया-कलाप, संघर्ष और आन्दोलन के तूफ़ानों में ही नहीं झोंके रखा अपने को, अपितु 'शब्द-कर्म' की साधना में, माँ भारती के चरणों में समर्पित हो गये। दोनों धाराएँ साथ-साथ चलीं, टकराती हुई नहीं, गलबहियाँ देती, बलखाती। एक जीवन की प्रेरणा थी, दूसरी जीवन की अमित ऊर्जा। बेनीपुरी को कभी इस बात का पछतावा नहीं रहा कि वे केवल साहित्य या राजनीति से जुड़े रहते तो उनका अवदान और उपलब्धि और भी ऊँचाइयों के उत्तुंग शुभ्र शृंगों पर विभासित किरणमाला की तरह हमारा मन मोहते। उनके जीवन-काल में और अब भी साहित्य-गोष्ठियों में यह प्रश्न उछलता ही है। बेनीपुरी ने खुद ही इस प्रश्न का उपयुक्त समाधान किया—"साहित्यिक सदा भावना-प्रवण होता है। क्या वह साहित्यिक का हृदय है, जो देश की दुर्दशा पर पिघल नहीं उठे? जब देशवासी जीवन-मरण के युद्ध में पिले हों, एकान्त कुंज में बैठकर वंशी बजाना—क्या साहित्यिक का यही कर्तव्य है? मुझे अपने राजनीतिक जीवन पर कभी अफ़सोस नहीं हुआ।"

"पच्चीस वर्षों तक संघर्ष में रहने, चौदह बार जेलों की हवा खाने और ज़िन्दगी के साढ़े सात साल जेलों में बिताने, सदा अपने को ज्वालामुखी में फेंकते रहने और उसकी झुलस और अंगार लिये बाहर निकलने से मेरी प्रतिभा में पंख ही नहीं लगे हैं। मेरी रचनाओं में, भाषा में, शैली में जो कुछ ज़िन्दगी है, ज़िन्दादिली है, रवानी है, सब कुछ उसी अग्निस्नान का ही फल है।"[25]

साहित्य और राजनीति के द्वन्द्व के सन्दर्भ में बेनीपुरी के अनन्य साहित्यिक मित्र स्व. जगदीश चन्द्र माथुर आइ.सी.एस. (तब आकाशवाणी के महानिदेशक) ने बेनीपुरी को पत्र लिखा और स्वयं बेनीपुरी ने जो उत्तर दिया, उससे बेनीपुरी की मानसिकता से हम गहराई से परिचित हो पाते हैं—

"यदि आप जहाज़ के पंछी की तरह भटके और अटके नहीं तो आप बेनीपुरी होते ही क्यों? आपकी विलक्षणता तो इसी में है कि आप देश-विदेश का दाना चुग लेते हैं, फिर भी आपके परों की रंगीनियाँ और आपके स्वरों की विविधता बराबर हम लोगों का मनोरंजन करती रहती है। यद्यपि मैं आपसे बराबर इस अटक-भटक से निस्तार पाने का अनुरोध करता रहता हूँ तथापि मैं जानता हूँ कि आपके व्यक्तित्व का यही ताना-बाना है। इससे छुटकारा कहाँ? और इसके बिना कैसे निखरेंगी आपकी आहत भावनाएँ, उमड़ता उल्लास और बेमिसाल मस्ती।"[26]

बेनीपुरी ने उत्तर में लिखा—मेरे उमड़ते उल्लास और बेमिसाल मस्ती पर तो बहुतों की नज़र गयी किन्तु 'आहत भावनाओं' पर आपने ही ध्यान दिया। आपने यह लिखकर एक दुखती हुई रग को छू दिया है। यदि हनुमान की तरह छाती चीरकर देखा जा सकता तो लोग मेरे हृदय पर लगी चोटों और रिसते हुए घावों को देखकर रोते। लोग तो यही देखते रहे हैं, मौज़ में है, मस्ती में है। अच्छा भी है—

रहिमन निजमन की बिथा मन ही राखो गोय।
सुनि अठिलैहें लोग सब बाँटि न लैहे कोय॥

उपलब्धियाँ

यह पत्राचार 1959 के आरम्भ का है। इससे सात वर्ष पूर्व बेनीपुरी की *माटी की मूरतें* शीर्षक रेखाचित्र साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत हुई। भारतीय संविधान द्वारा स्वीकृत चौदह भाषाओं में उस कालजयी कृति का अनुवाद हो चुका था। *अम्बपाली* भारतीय भाषाओं में पहला हिन्दी नाटक था, जिसकी रंगमंचीय प्रस्तुति संगीत नाटक अकादेमी द्वारा हुई। *जयप्रकाश* शीर्षक प्रेरक जीवनी इससे पहले ही (1947) प्रस्तुत कर चुके थे। स्वाधीनता के बाद के आरम्भिक वर्षों में बेनीपुरी ने जीवनी, संस्मरण, आत्मकथा, यात्रा, नाटक और निबन्ध आदि की रचना कर हिन्दी साहित्य को अपनी शताधिक गौरवपूर्ण कृतियों और अद्वितीय शैली से एक विशिष्ट गरिमा और अपरिमेय प्रतिमान की ऊँचाई भी दी। 1951 और 1952 में दो बार वे यूरोप की यात्रा पर सांस्कृतिक प्रतिनिधि मण्डल और भारतीय समाचार पत्रों के प्रतिनिधि की हैसियत से गये। वे यात्राएँ सैर-सपाटे के लिए नहीं थीं। अपनी दोनों यात्राओं का वर्णन अपनी तीन यात्रा-कृतियों में (*पैरों में पंख बाँधकर, उड़ते चलो, उड़ते चलो, पैरिस नहीं भूलती*) इतनी रोचकता और ज़िन्दादिल भाषा में किया कि वे हिन्दी के यात्रा-साहित्य की मूल्यवान अवदान के रूप में प्रमाणित हो गयी। यूरोप में स्वच्छता, सुचारुता, कलाप्रेम और सौन्दर्य

दृष्टि से चिन्तन के स्तर पर ही नहीं प्रभावित हुए अपितु उसके लिए वे सतत आन्दोलन करते रहे।

पत्रकारिता के शिखर पर

अपने एक संस्मरण में बेनीपुरी ने लिखा है—"इस जीवन में बहुत से काम मैंने लाचारी में किये, पत्रकारिता को मैंने अपनी अन्तःप्रेरणा से अपनाया था।"[27] हज़ारीबाग़ जेल से छूटते ही पुस्तक भण्डार लहेरियासराय द्वारा संचालित मासिक 'हिमालय' (पटना से प्रकाशित) के सम्पादक बने। आचार्य शिवपूजन सहाय और राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' भी उससे जुड़ गये। उसके अंकों में देशरत्न राजेन्द्र प्रसाद की आत्मकथा प्रकाशित हुई। 'हिमालय' उस समय के हिन्दी मासिक पत्रों का 'हिम-शिखर' था। पर यहाँ भी 'बालक' के इतिहास की पुनरावृत्ति हुई। वह अल्पायु में ही तिरोहित हो गया। 'जनता' (साप्ताहिक 1946), जनवाणी (1948 आचार्य नरेन्द्रदेव के साथ), नई धारा, 'चुन्नू मुन्नू' (मासिक 1950) और 'जनता' (दैनिक 1951) के प्रधान सम्पादक रहे। 'नई धारा' साहित्य, संस्कृति और कला का पत्र था, जिससे 1959-60 की गम्भीर अस्वस्थता के बावजूद यावज्जीवन वे जुड़े रहे। इन पत्रों के माध्यम से पत्रकारिता कला को अपनी क्षमता और प्रतिभा के बल पर परवान चढ़ाया। एक ऊँचा प्रतिमान स्थापित किया। पत्रकारिता की अस्मिता की रक्षा के लिए हिन्दी जगत् में इतने ख़तरों को झेलनेवाला दूसरा पत्रकार दूर-दूर तक दिखाई नहीं देता। उनकी अधिकांश जेलयात्राएँ क्रान्तिकारी लेखन के लिए ही हुईं। उनका 'इन्क़लाब ज़िन्दाबाद' के आह्वान का स्वर कभी मन्द नहीं पड़ा। (बेनीपुरी, *मुझे याद है*, पृ. 157-165)

राजनीति और आत्मपीड़ा

देश की स्वाधीनता के बाद लम्बे अर्से तक काँग्रेस केन्द्र और राज्य में शासन में रही। बेनीपुरी यह अनुभव करते थे कि समाजवाद का उनका सपना अधूरा ही है। पर उसके लिए केवल काँग्रेस ही ज़िम्मेदार नहीं, उनकी दृष्टि से ख़ुद प्रजा सोशलिस्ट पार्टी और उसके नेता भी कम ज़िम्मेदार नहीं। उन्होंने जयप्रकाश को अक्तूबर 1959 में कुछ पत्र लिखे। वह पत्र बेनीपुरी ने अपनी डायरी में यथावत् उद्धृत कर उस समय के राजनीतिक द्वन्द्व का ऐतिहासिक दस्तावेज़ ही प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत कर दिया है—पत्र का कुछ अंश यों है—

"प्रिय जयप्रकाश जी,

मुझे प्रजा सोशलिस्ट पार्टी की दुर्गत पर बड़ा क्षोभ होता है, पार्टी को इस स्थिति में लाने का श्रेय केवल राममनोहर लोहिया को ही नहीं, आपका भी इसमें सबसे बड़ा हाथ है। इसकी उन्नति और अवनति का श्रेय आपके दो पलायनों को है। एक बार आपने हज़ारीबाग़ जेल से पलायन किया। तो पार्टी हिम शिखर पर आरूढ़ हुई। और

पार्टी छोड़कर आपने पलायन किया तो गड्ढे में जा गिरी।...आपने एक बार कहा था—'असली लड़ाई तानाशाही और जनतन्त्र के बीच होगी। तानाशाही दिन-दिन बढ़ती जा रही है। क्यों नहीं जनतान्त्रिक शक्तियों को एकत्र करने की दिशा में प्रयत्न करते। यदि आप ऐसा कर सकें तो इतिहास आपकी इस सेवा को भुला नहीं सकेगा। जनतन्त्र का मसीहा ही आपको मानेगा। कई रातें मेरी अनिद्रा में ही कटी हैं। आप मेरी इस बात पर यक़ीन करेंगे। अतः चाहता हूँ कि इस पार्टी को शरण मिल जाए।' "[28]

जयप्रकाश जनतन्त्र के मसीहा

यह एक विरल संयोग ही कहा जा सकता है कि बेनीपुरी के पत्र में उल्लिखित 'तानाशाही के ख़िलाफ़ जनतान्त्रिक शक्तियों को एकत्र करने' का वह विराट् प्रयास 1974 में सम्पूर्ण क्रान्ति के आह्वान के रूप में जयप्रकाश ने किया और सारा देश उनके साथ हो गया। लम्बे अर्से तक क़ैद में रहे। इमर्जेन्सी आयी। स्वाधीनता के बाद पहली बार 1977 में आम चुनाव के बाद केन्द्र में सत्ता का परिवर्तन हुआ। जनता पार्टी सत्ता में अल्पकाल के लिए आयी, जिसके उन्नायक लोकनायक जयप्रकाश थे। वे सचमुच में जनतन्त्र के मसीहा सिद्ध हुए।

बेनीपुरी से मिलने जयप्रकाश मुज़फ़्फ़रपुर 5.10.1966 को आये। बेनीपुरी के मन में प्रेरणा जगी कि 1947 में प्रकाशित जीवनी 'जयप्रकाश' का दूसरा संस्करण निकले जिसमें 'जयप्रकाश' का अद्यतन जीवन भी हो। दूसरे संस्करण की भूमिका 5.10.1967 को लिखी गयी, जिसकी अन्तिम पंक्तियों में बेनीपुरी की लेखनी से अनायास इतिहास का भावी सत्य यों सात वर्ष पहले ही प्रतिभासित हो उठा—

"आज जयप्रकाश का राजनीति से तटस्थ रहना देश के हित में नहीं है। सीता की तरह भारतभूमि उन्हें आवाज़ दे रही है। मेरी तो कामना थी देश को सुखी समृद्ध देखने की, वह आज भी अधूरी है।

"पर यह कामना अभी भी शेष है—जयप्रकाश आगामी वर्षों में देश के इस विघटन, बिखराव, अन्धकार और निराशा के घुटनपूर्ण वातावरण में नया प्रकाश, नयी किरण दें, यह अन्धकार फटेगा, निराशा टूटेगी—देश के आगे नया स्वर्ण विहान होगा—जब गाँव-गाँव और नगर-नगर में जीवन की स्वच्छता, सुख-सुविधा समान रूप से वितरित होगी। जयप्रकाश की इस पुनीत भावना का जयघोष करता हूँ।"[29]

नये भारत का मनोरम प्रकल्पन

सारस्वत सम्मान का वह अद्भुत अनुष्ठान

बेनीपुरी 1957 के आम चुनाव में बिहार विधान सभा के सदस्य हुए। उन्हें लगा कि वे इस रूप में अपने सपनों को शायद अधिक तेज़ी से आकार दे सकें। 1959 का

वर्ष बेनीपुरी के जीवन का मेरी दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट वर्ष था। इसी वर्ष (5.10.1959) बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना के वार्षिक समारोह के अवसर पर भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को 'बापू के क़दमों में' शीर्षक संस्मरणात्मक रचना तथा वयोवृद्ध साहित्यकार के रूप में पुरस्कार और सम्मान प्राप्त हुआ। साथ में बेनीपुरी को *बेनीपुरी ग्रन्थावली* भाग दो (नाटक) पर पुरस्कार दिया गया। इस साहित्यिक अनुष्ठान की अध्यक्षता कर रहे थे, राष्ट्रपति और देशरत्न, दूसरा *भारत-भारती* का गायक राष्ट्रकवि तो तीसरा *माटी की मूरतें* का सर्जक राष्ट्रशिल्पी, स्वप्न-द्रष्टा बेनीपुरी!

हवा पर

भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री पं. जवाहरलाल नेहरू स्वयं अत्यन्त संवेदनशील, स्वप्न-द्रष्टा, राष्ट्र-निर्माता थे। देश के अन्य भागों की तरह बिहार में भी जन-जीवन की सुख-समृद्धि के लिए बड़े पैमाने पर नवनिर्माण का कार्य हो रहा था। 'आकाशवाणी' ने उन बड़ी योजनाओं पर बेनीपुरी से हिन्दी में रूपक का मूल आलेख तैयार करवाया। भारत की चौदहों भाषाओं में आकाशवाणी के सभी स्टेशनों से इस वर्ष प्रसारित हुए वे आलेख। वे आलेख नहीं, भारत की धमनियों में नवनिर्माण की नयी रक्तधार का तेज़ी से जो संचार हो रहा था, उसके जीवन्त शब्द-चित्र थे। 'लहराती चल दामोदार', आँसुओं की नदी कोसी, इस्पातपुरी, जमशेदपुर, वैशाली और लुम्बिनी, राजेन्द्र पुल योजना'—इन से बिहार का नक़्शा बदला और बेनीपुरी इसी बदलाव के लिए सारा जीवन अपने शब्दकर्म और क्रान्तिधर्मी चरित्र से सचेष्ट रहे। (1.1.59 से 5.1.59 की डायरी पर अंकित सूचनाओं के आधार पर, पृष्ठ 1 से 15 तक)

ज़मीन पर

इन्हीं उथल-पुथल भरे दिनों में 1958-59 के मध्य बेनीपुरी के मन में अपनी 'गेहूँ और गुलाब' की कल्पना को चरितार्थ करने की धुन सवार हो गयी—अपने ग्राम्य अंचल में। 1934 के भूकम्प के बाद बेनीपुरी महात्मा गाँधी को अपने और पास-पड़ोस के गाँव में ले गये थे। महात्मा गाँधी के चरणों के स्पर्श मात्र भरथुआ चौर से एक नहर निकली और आसपास के पच्चीसों गाँवों के खेतों और चौरों में हरियाली, सोनवर्षी फ़सल वर्षो बाद लहलहाने लगी थी।

बेनीपुरी के मन में कल्पना ने अँगड़ाई ली तरुणाई के दिनों की तरह—क्यों नहीं, महात्मा गाँधी की स्मृति में एक 'गाँधी स्वाध्याय मन्दिर' और एक महाविद्यालय इस देहात में बनाया जाए, जहाँ वे भी ऊँची शिक्षा प्राप्त कर सकें, जिन्हें सदियों से अक्षर ज्ञान भी नसीब नहीं है। बस 1959 के शुरुआती के दिनों में इस विराट् आयोजन को ठोस आकर देने के लिए प्राणपन से जुट गये बेनीपुरी।

महान् आदर्श के लिए आत्मोत्सर्ग

जीवन के इन अन्तिम वर्षों में बेनीपुरी अपने इस 'गेहूँ और गुलाब' की प्रकल्पना के, अपनी समाजवादी जीवन-धारणा के कार्यान्वयन के लिए आपादमस्तक आन्दोलित और उत्साहित थे। उन्होंने गाँधी भूमि में निर्मित स्वाध्याय मन्दिर की इन पर्णकुटियों में से एक में मई 59 की भी दोपहर में अक्षय तृतीया के दिन इस बागमती कॉलेज के लिए अपने जीवन को उत्सर्ग करने का व्रत-संकल्प लिया—

"मैं इस समय अद्भुत भावनालोक में हूँ, एक कॉलेज बन जाए, बीच में पचास फीट ऊँचे स्तम्भ पर महात्मा गाँधी की मूर्ति हो, जहाँ 1934 में महात्मा गाँधीजी की सभा का सिंहासन बना था, वहाँ गाँधी भूमि में संगीत, साहित्य और कला की त्रिवेणी अहर्निश बहा करे। भव्य भवनों से पूरित, नाना पुष्पराशि से आभूषित युवक-युवतियों के कलकूजन से मुखरित इस आदर्श संस्था के लिए अपना जीवन दान कर दूँ वह क्या सब प्रकार से शुभ और सुन्दर न होगा?"

"ओ मेरी कल्पना, तू साकार बन। मैंने मन ही मन संकलप किया, अपना शेष जीवन इस कॉलेज के लिए उत्सर्ग कर दूँगा। मेरे जीवन की यह अन्तिम कामना है। क्या इसे पूर्ण होते देख सकूँगा?"[30]

जिस दिन कॉलेज के लिए अपना शेष जीवन उत्सर्ग करने का प्रण किया बेनीपुरी ने, वह अक्षय तृतीया थी, उसी दिन नींव पड़ी। इससे पूर्व ही बेनीपुरी ने कुछ महीनों में महाविद्यालय के लिए बाईस बीघे और गाँधी स्वाध्याय मन्दिर के लिए पाँच बीघे ज़मीन उपार्जित की। बाँस-काठ और रुपये चन्दा कर महाविद्यालय का विशाल, भव्य खपरैल भवन बेनीपुरी ने अपने अटूट संकल्प की ताकत और पास-पड़ोस के लोगों के सहयोग से खड़ा कर दिया।

'रामवृक्ष' के जीवन का यही 'रामधुन' हो गया। आठों याम उनके जीवन की कविता (वही गद्य और वही रस शैली) ज़रूरत पड़ने पर वर्षों से सुरक्षित, समृद्ध दुर्लभ ग्रन्थों, पत्र-पत्रिकाओं का संग्रह कॉलेज के पुस्तकालय को दान कर दिया। कॉलेज 12.7.59 को खुल गया और उसी साल शरत् पूर्णिमा 17.9.59 की सुहावन चाँदनी रात में उस ग्राम्य अंचल में लोकगीत, संगीत, नृत्य, कविता और नाट्योत्सव का अद्भुत आयोजन गाँधीभूमि में किया। डॉ. धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा, शिखर कवि आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री, महान् गायक सीताराम दाण्डेकर और कविवर राजेन्द्र प्रसाद सिंह जैसी विभूतियों ने उस समारोह को, अपनी दाद से जनसमुद्र को तरंगित और आन्दोलित किया। इस ग्रामीण अंचल में ऐसा नागर, पुरस्कृत, चाक्षुष और श्रव्य यज्ञ न भूतो न भविष्यति।

राष्ट्रपति का शुभागमन बेनीपुर में

31 दिसम्बर, 1959 का वह अरुणोदय। चारों ओर धनखेतों में झूमते धनबाल और उनपर मोती से ढलमल करते उज्ज्वल दाने, उनपर नृत्य करती सविता देवता की रंग-बिरंगी कोमल किरणें। उन्हीं के बीच से राह बनाती टेढ़ी-मेढ़ी पगडण्डियों पर आती श्रद्धालु जनता। राष्ट्रपति, देश के महान् रत्न राजेन्द्र बाबू आ रहे हैं गाँधी स्वाध्याय मन्दिर का शिलान्यास करने। अपूर्व था अविस्मरणीय अद्भुत वह समारोह। बेनीपुर, बेनीपुरी और उस ग्राम अंचल का यह गौरवपूर्ण शुभ मुहूर्त।

विशेष रूप से निर्मित मंच पर राष्ट्रपति जी, राज्यपाल डॉ. ज़ाकिर हुसैन, बेनीपुरी और इन पंक्तियों का लेखक भी मौजूद था, इस राष्ट्र के महान् पुरोधा के स्वागत और अभिनन्दन के लिए। बेनीपुरी केवल दो दिन पहले काम के बोझ के कारण पक्षाघात के भयंकर चपेट में पड़ गये थे। आह! जो चिर युवा बेनीपुरी सारा जीवन 'बालक', 'युवक' और 'जनता' को प्रेरणापूर्ण वचनों से आन्दोलित करता रहा, आज जब स्वाधीन भारत के प्रथम राष्ट्रपति और बिहार के राज्यपाल उसके प्यार भरे आमन्त्रण पर उसके द्वार पर उपस्थित हैं, उसके हृदय में गर्व और गौरव, आनन्द और कृतज्ञता का यह कैसा भाव उमड़ रहा है, पर वाणी कितनी विवश हो गयी है। स्वागत के दो शब्द बोले, पर कितनी कठिनाई से। आँखें विवशता, आनन्द और कृतज्ञता के भाव से कितनी सजल थीं। राष्ट्रपति अपने इस चिरयुवा सहयोगी को यों देख कितने करुणार्द्र हो उठे थे!

31 दिसम्बर 1959, बेनीपुरी के, स्वातन्त्र्य योद्धा के जीवन का सर्वोत्कृष्ट अविस्मरणीय, उल्लेख दिन। वैसा स्वर्णविहान बेनीपुरी के जीवन में फिर न लौटा। और न लौटा वह जीवन-प्रकाश, जिससे वह स्वयं अहर्निश आलोकित होते और दूसरों को उद्दीप्त करते रहे।

जीवन के लिए बेचैनी

कर्मयोगी, चिरविद्रोही, चिरयुवा, सतत आन्दोलनकारी बेनीपुरी की कर्ममय जीवन-यात्रा यहीं इसी गाँधी भूमि की पावनभूमि में पूरी हुई 31 दिसम्बर 1959 को। बेनीपुरी आठ वर्ष, आठ महीने, छह दिन तक (7 सितम्बर, 1968) अपनी सहसा खोयी जीवन शक्ति को पुनः पाने के लिए भारी बेचैनी के साथ संघर्ष करते, जूझते ही रहे। पर वह पुनः न लौटी, तब भी उनकी अन्तरात्मा हारी नहीं। यही बेनीपुरी थे सच्चे अर्थों में। उनकी प्रबुद्ध चेतना, उनका धारदार पत्रकार, उनका स्वातन्त्र्य योद्धा, समाजवाद को धरती पर आकार देने को व्याकुल मन, 'गेहूँ और गुलाब' का स्वप्न-द्रष्टा, नयी संस्कृति, नयी नारी का सूत्रधार बाहर-बाहर थक चुका था—पर उसके अन्तर की जोत जलते ही रहने के लिए निरन्तर काँपती रही, एकदम बेचैन रही।

1967 में हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग ने अपनी सर्वोच्च सम्मान उपाधि

'साहित्य वाचस्पति' से बेनीपुरी को अलंकृत किया। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् ने भी जनवरी 1968 में उन्हें वयोवृद्ध साहित्यकार के सम्मान देने हेतु का मुज़फ़्फ़रपुर के टाउन हाल में आयोजन किया। समाजवाद की संरचना में उनके अनन्य सहयोगी तब शिक्षामन्त्री स्व. कर्पूरी ठाकुर बेनीपुरीजी को गोद में उठाकर मंच पर ले गये। क्या ही उल्लासपूर्ण, अन्तःश्रद्धा और सम्मान का चिरस्मरणीय वह करुणाविमिश्रित हृदयस्पर्शी दृश्य था। वाणी के इस वरप्राप्त पुत्र क्रान्ति के अग्रदूत की वाणी विवश थी, बस मंच पर और सामने विद्वानों, साहित्यकारों, श्रद्धा-सिक्त प्रबुद्ध श्रोताओं की देख बेनीपुरी की आँखों से (जिनसे कभी क्रान्ति की चिनगारियाँ फूटती थीं) अविरल छल-छल अश्रुधार, बस आँसुओं के वे मोती कपोलों पर ढुलकते रहे, ढुलकते रहे!

महाप्रयाण

छह सितम्बर, 1968 को चिर प्रतीक्षा के बाद महाप्राण को मृत्यु-जननी ने अंक में लगा ही लिया। जीवन-दीप बुझ गया। कितना शान्त, अनुद्विग्न, विश्रान्त यह चिर योद्धा बेनीपुरी चिर-निद्रा में सोया है।

"इस पथ का उद्देश्य नहीं है श्रान्त भवन में टिक रहना।
किन्तु पहुँचना उस सीमा पर जिसके आगे राह नहीं ॥" (प्रसाद)

बेनीपुरी न केवल स्वातन्त्र्य योद्धा, समाजवाद के प्रमुख प्रकल्पकों में एक और अमृतधर्मी यायावर ही थे, वे सच्चे अर्थों में बीसवीं सदी में भारत के उनहत्तर वर्षो के इतिहास (1899-1968) की एक मज़बूत कड़ी थे। आज़ादी की रोमहर्षक लड़ाइयों के वे अपराजेय योद्धा थे। उन्होंने अपनी रचनाओं और 1950-1960 तक की डायरी में 'राष्ट्रीय आन्दोलन, समाजवाद, नेहरू, जयप्रकाश, आचार्य नरेन्द्रदेव, लोहिया, लोकनीति और राजनीति पर इतनी महत्त्वपूर्ण प्रामाणिक सामग्री दी है कि रचनाओं और डायरियों के हज़ारों पृष्ठों में आधुनिक बिहार के इतिहास का प्रामाणिक दस्तावेज़ ही प्रस्तुत हो गया है।'[31] बिहार में आज़ादी और समाजवाद के इतिहास को रचा और गढ़ा, उसके एक नायक ही नहीं बने, उसका सच्चा अभिलेख भी अपनी तमाम रचनाओं में उत्कीर्ण किया। ऐसी बहुरंगी प्रतिभा का धनी, ऊँचे जीवन-मूल्यों पर अपने जीवन को उत्सर्ग करनेवाला इतना बड़ा इन्सान कहाँ दिखाई पड़ रहा है जो आज़ादी के बाद के भारत को अपनी त्यागमय ज़िन्दगी से बनाए? बेनीपुरी बिहार के ही नहीं, देश के महान गौरव और अद्भुत विभूति थे।

बेनीपुरी के क्रान्तिकारी समाजवादी आन्दोलन के महत्त्वपूर्ण अवदान का यह मूल्यांकन कितना सार्थक है :

It would be simply a little praise for his grand revolutionary personality if we say he was really a Mezini of Socialistic revolution in India. Indeed he was much more than that.[32]

सन्दर्भ सूची :

1. रामधारी सिंह दिनकर, स्वर्गीय बेनीपुरी जी, नई धारा, स्मृति अंक, 1969, पृ. 107
2. देवेन्द्र सत्यार्थी, नई धारा, स्मृति अंक, पृ. 115
3. रामवृक्ष बेनीपुरी, *मुझे याद है*, पृ. 13
4. लक्ष्मीनारायण मिश्र, नई धारा, बेनीपुरी स्मृति अंक, पृ. 225
5. रामवृक्ष बेनीपुरी, *मुझे याद है*, पृ. 21
6. वही, पृ. 30
7. वही, पृ. 30
8. रामवृक्ष बेनीपुरी, *मुझे याद है*, पृ. 48
9. रामवृक्ष बेनीपुरी, ज़िन्दगी : पत्रकार जीवन के तीस वर्ष, अप्रकाशित पाण्डुलिपि, पृ. 2
10. वही, पृ. 9
11. वही, पृ. 10
12. रामवृक्ष बेनीपुरी, पत्रकारिता के तीस वर्ष, पृ. 13
13. डॉ. राजेश्वर प्रसाद सिंह, 'समाजवादी आँगन का एक समर्पित साहित्यकार', दैनिक आज, 7.9.1996 (पटना)
14. प्रोसीडिंग्स ऑफ़ वी एण्ड ओ. लेजिस्लेटिव काउन्सिल्स, 1932, ज़िल्द 26, पृ. 140-41
15. रामवृक्ष बेनीपुरी, *पत्रकार जीवन के तीस वर्ष*, पृ. 51
16. रामवृक्ष बेनीपुरी, *मुझे याद है*, पृ. 155
17. 'जनता', 15 अक्टूबर, 1937, पृ. 5
18. *बेनीपुरी का लोकमानस और लोकरंजन* : प्रो. केसरी कुमार, पृ. 9
19. *हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमेण्ट इन बिहार*, पृ. 278
20. बेनीपुरी का लोकमानस और लोकरंजन, पृ. 9
21. रामवृक्ष बेनीपुरी, *संघमित्रा*, अंक 2
22. *ज़ंजीरें और दीवारें*, पृ. 271
23. रामवृक्ष बेनीपुरी, *मुझे याद है*, पृ. 170
24. रामवृक्ष बेनीपुरी, *गेहूँ और गुलाब*, भूमिका, पृ.-ख
25. रामवृक्ष बेनीपुरी, *मुझे याद है*, पृ. 169
26. रामवृक्ष बेनीपुरी, 8.3.59 की डायरी, पृ. 36
27. रामवृक्ष बेनीपुरी, *मुझे याद है*, पृ. 56
28. 22.10.59 की डायरी में उद्धृत जयप्रकाश के नाम पत्र, पृ. 39 पर

29. *जयप्रकाश,* द्वितीय संस्करण भूमिका भाग, पृ. 3
30. जनाढ़ 11.5.59 की डायरी, पृ. 72
31. 'रामवृक्ष बेनीपुरी की कृतियों में बिहार के आधुनिक इतिहास के स्रोत', डॉ. सुरेन्द्रनाथ दीक्षित, 1981 में बिहार इतिहास परिषद् में पठित शोधपत्र, पृ. 15
32. डॉ. जे एन. पाण्डे, 'श्री रामवृक्ष बेनीपुरी एण्ड द फ्रीडम मूवमेण्ट इन बिहार', अनपब्लिश्ड थीसिस, पृ. 216

□□

स्वातंत्र्य संग्राम : बेनीपुरी की क्रान्तिकारी पत्रकारिता

रामविलास शर्मा

हिन्दी-प्रदेश में क्रान्तिकारी पत्रकारिता के तीन मुख्य प्रतिनिधि हैं—**गणेश शंकर विद्यार्थी, माखनलाल चतुर्वेदी** और **रामवृक्ष बेनीपुरी**। बेनीपुरी और चतुर्वेदी जी दोनों कवि थे। विद्यार्थीजी मुख्यतः गद्य लेखक थे। परन्तु उन्होंने अपने लेखन से बहुत-से कवियों, कलाकारों, उपन्यासकारों आदि को प्रभावित किया। उनके समय में कानपुर मज़दूर-संगठन और मज़दूर आन्दोलन का केन्द्र था। कम्युनिस्ट पार्टी का जन्म राजा मोहन गोकुल जी और सत्यभक्त के प्रयत्नों से यहीं हुआ था। वे पश्चिम में मध्य प्रदेशों के लेखकों को और पूर्व में विहार के लेखकों को प्रभावित कर रहे थे।

इस वर्ष आठ खण्डों में बेनीपुरी ग्रन्थावली छपी है। उसमें स्वाधीनता आन्दोलन, विशेष रूप से किसान आन्दोलन और उसमें समाजवादियों की भूमिका के बारे में बहुत उपयोगी जानकारी है। वह जानकारी आज के भारत को देखते हुए बहुत प्रासंगिक है। बेनीपुरी ने अपने संस्मरणों में लिखा है : "रूसी क्रान्ति के बाद वह समाजवाद अथवा साम्यवाद का नाम सुनने लगे थे। रूस एक नयी सभ्यता का प्रतीक था। जब वह स्कूल में पढ़ रहे थे तब गणेश शंकर विद्यार्थी के 'प्रताप' और 'प्रभा' में इस नयी दुनिया के लिए होनेवाले संघर्षों और प्रयोगों का वर्णन पढ़ते हुए अघाते नहीं थे। और वह कल्पना करते थे कि बड़े होने पर अपने देश में भी ऐसी दुनिया की स्थापना के लिए चेष्टा करेंगे (4/74-75)। शौकत उस्मानी ने रूस का आँखों देखा हाल लिखा था। रमाशंकर अवस्थी ने रूसी क्रान्ति पर पुस्तक लिखी थी। कानपुर में वोल्शेविक षड्यन्त्र केस चला था। फिर मेरठ षड्यन्त्र केस चला। उसके वकीलों में देवकी प्रसाद सिंह भी थे। वह बिहार के थे और बेनीपुरी उनसे परिचित थे। लिखते हैं : एक दिन देवकी बाबू से मिला और चाहा कि उनके पास की सामग्री के आधार पर इस केस के सम्बन्ध में एक पुस्तक लिख डालूँ। बेनीपुरी मुज़फ़्फ़रपुर के एक पत्र 'लोकसंग्रह' में काम करते थे सम्पादन का। जब भूकम्प आया तब प्रेस आदि मलवे के नीचे दब गये। बेनीपुरी 1922-30 तक 'तरुण भारत', 'किसान मित्र', 'बालक' और 'युवक' का सम्पादन कर चुके थे। 'बालक' ने उन्हें सिद्ध साहित्यकार बनाया और 'युवक' ने उन्हें राजनीति में प्रवेश के लिए प्रेरित किया। यह क्रान्तिकारी पत्र था। पहले 'युवक' में ही समाजवाद पर लेख प्रकाशित हुआ। 'युवक' के शहीद अंक के कारण डेढ़ वर्षों की सजा हुई। 1930-31 तक 'युवक'

के सम्पादन काल में ही बेनीपुरी पूर्णतया समाजवादी हो चुके थे। उन्होंने ईश्वर के अस्तित्व तक को इनकार कर दिया। जाति, वर्ण, वर्ग भेद की निशानी-शिखा-सूत्र को सदा के लिए ताक पर रख दिया। (मुझे याद है, पृ. 9, बेनीपुरी ग्रन्थावली, भाग-4)।

बेनीपुरी की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। काम ढूँढ़ रहे थे। जयप्रकाश नारायण खाण्डवा गये थे। वहाँ माखनलाल चतुर्वेदी ने उनसे कहा था : उन्हें एक अच्छे सहकारी की ज़रूरत है। जब बेनीपुरी का पत्र जयप्रकाश नारायण के पास पहुँचा तो उन्होंने सुझाया तुम खाण्डवा चतुर्वेदी जी के पास चले जाओ। बेनीपुरी खाण्डवा पहुँच गये। माखनलाल चतुर्वेदी के बारे में उन्होंने लिखा : वह कविता के क्षेत्र में एक 'भारतीय आत्मा' के नाम से प्रसिद्ध थे। बहुत दिनों से मेरे लिए वे साहित्यिक आदर्श थे। जब खाण्डवा से उन्होंने 'प्रभा' निकाली तभी से मैं उनका अनुरक्त और भक्त था। मैं उन दिनों मिडिल में पढ़ रहा था तो तभी 'प्रभा' को पढ़ने और समझने की चेष्टा करता था। जब जबलपुर से 'कर्मवीर' निकला मैं उसका पाठक था। जब मैं कविता लिखने लगा, 'प्रताप' के साथ अपनी कविता 'कर्मवीर' में भी भेजा करता था। 1921 के आंदोलन में जब मेरे पूज्य श्वशुरजी जेल गए मैंने एक कविता लिखी थी : जेल गये हाँ, जेल गये। वह 'कर्मवीर' में ही छपी। गणेश शंकर जी जब दिल्ली गये थे तब 'प्रताप' का सम्पादन-भार चतुर्वेदी जी ने ही उठाया (4/81)। इस तरह गणेश शंकर 'विद्यार्थी', माखनलाल चतुर्वेदी और रामवृक्ष बेनीपुरी आपस में जुड़े हुए थे। वह जब 'पटना कैम्प जेल में थे' तब उन्होंने कम्युनिस्ट मैनिफ़ेस्टो का अनुवाद किया था (4/75)। इसके बाद उन्होंने बिहार सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना की। उन्होंने लिखा है : जयप्रकाश जी से हमारा सम्पर्क नहीं हुआ था। (4/76)। बाद में जब सम्पर्क हुआ तब दोनों ने मिलकर अखिल भारतीय सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना की। प्रश्न यह है कि काँग्रेस स्वाधीनता आन्दोलन का नेतृत्व कर रही थी तो सोशलिस्ट पार्टी नाम के संगठन की आवश्यकता क्या थी?

स्वाधीनता आन्दोलन और किसान

बिहार के किसानों के बारे में बेनीपुरी ने लिखा है : वे सदा खुशहाल रहे किन्तु इन खुशहाल किसानों पर कार्नवालिस ने ज़मींदारों का जुआ रखकर उन्हें दुर्गत की गाड़ी में जोत दिया। जो कभी ज़मीन के मालिक थे, वे अर्धदास बन गये (4/83)। इस तरह साम्राज्यवाद से लड़ने के लिए ज़मींदारों से लड़ना ज़रूरी था। ज़मींदारों के माध्यम से अंग्रेज़ किसानों को दबाए रखते थे। पहले नील की खेती करनेवाले बहुत गोरे ज़मींदार बिहार में थे। उनके अत्याचारों के विरुद्ध गाँधीजी ने जाँच कराई और उनके अत्याचार एक हद तक कम हुए। लेकिन देशी ज़मींदार अब भी बने हुए थे। बेनीपुरी के शब्दों में उनके दलाल तो बरकरार ही रहे। इस देश की सबसे बड़ी ज़मींदारी बिहार में थी, जिसकी सम्पत्ति करोड़ों में कूती जाती थी। लखपति ज़मींदार तो पग-पग पर मिलते थे।

समूचे बिहार में महाराजाओं, राजाओं, बाबुओं की भरमार थी (4/83)। इससे स्पष्ट है कि ज़मींदार-विरोधी क्रान्ति के बिना साम्राज्य-विरोधी आन्दोलन सफल न हो सकता था। जब मोंटेग्यू चेम्स्फोर्ड सुधारों का सिलसिला चला तब कुछ लोगों ने सोचा किसानों को संगठित करना चाहिए, जिससे उनके वोट लेकर धारा-सभाओं में चुने जा सकें। काँग्रेस नेताओं ने भी इस ओर ध्यान दिया। उन्होंने एक सभा बुलाई। उसमें स्वामी सहजानन्द को सभापति बनाया। उस किसान-सभा के प्रधानमन्त्री बनाए गये श्रीकृष्ण सिंह, जो बिहार के चीफ मिनिस्टर बने। उस सभा में बेनीपुरी भी थे। लिखा : मैंने उसका विरोध किया था। मुझे यह सारा कुछ मायाजाल लगता था (4/84)। उनका अपना अनुभव यह था कि हम अंग्रेज़ी राज को भी तब तक दूर नहीं भगा सकते, जब तक इस आन्दोलन में किसान नहीं आते (4/84)। कुछ अपने अनुभव से सीखा था और कुछ 1930-32 में जेल के भीतर रहते हुए पढ़-लिखकर समझा था।

बेनीपुरी जी का विचार था—किसानों का अलग संगठन होना चाहिए। उन्होंने सरकारी रिपोर्ट पढ़ी थी और इस नतीजे पर पहुँचे थे कि बिहार की उन्नति तब तक नहीं हो सकती, जब तक ज़मींदारी प्रथा उठा नहीं दी जाती। 1933 में साल भर की सजा काटने के बाद उन्होंने ज़मींदारी के ख़िलाफ़ लिखना शुरू किया। प्रताप में उनका लेख 'ज़मींदारी क्यों उठा दी जाए?' छपा था। कुछ इसी विषय से सम्बन्धित लेख 'विश्वमित्र' और 'विशाल भारत' (दोनों ही कलकत्ता से) में छपे थे। बिहार में स्वामी सहजानन्द सरस्वती किसानों का संगठन कर रहे थे। बेनीपुरी के अनुसार बिहार में किसान आन्दोलन की यथार्थ नींव स्वामी सहजानन्द ने ही डाली थी 4/84)। दिलचस्प बात है कि शुरू से ही सहजानन्द और बेनीपुरी में मतभेद थे। मुज़फ़्फ़रपुर के ज़िला किसान सम्मेलन में बेनीपुरी ने ज़मींदारी उठाने का प्रस्ताव रखा था तब सहजानन्द उन पर नाराज़ हुए। उनका विचार था अभी ऐसा प्रस्ताव नहीं आना चाहिए (उपर्युक्त)। लेकिन वह प्रस्ताव पास हो गया था। वे 'योगी' पटना साप्ताहिक के सम्पादक थे और उसे किसान आन्दोलन का मुख पत्र-सा बना दिया था। वे फैजपुर काँग्रेस में गये। वहाँ भी ऐसा प्रस्ताव रखा। इस प्रस्ताव पर जवाहरलाल नेहरू बिगड़ उठे थे। उसे 'कब्लअजवक़्त' कह कर टाल दिया था (4/85)। लेकिन फैजपुर काँग्रेस ने किसानों का एक कार्यक्रम स्वीकार किया था। बेनीपुरी का विचार है उसी कार्यक्रम के आधार पर 1937 में किसानों ने काँग्रेस को इतनी मदद दी कि सात प्रान्तों में काँग्रेस मन्त्रिमण्डल बन गया (4/85)।

काँग्रेस और सोशलिस्ट पार्टी का सम्बन्ध दिलचस्प है। बेनीपुरी ने लिखा है : हमने अपनी पार्टी में एक विशेषता रखी थी—जो काँग्रेस के सदस्य हों, वही इस पार्टी के सदस्य हो सकते थे और उनके लिए सदा खादी का व्यवहार करना और अपने को जाति-पाँति के भेदभाव से बिल्कुल अलग रखना अनिवार्य शर्त थी (4/75)। काँग्रेस का सदस्य होना शायद इसलिए ज़रूरी था कि स्वाधीनता के लिए सबको लड़ना है। लेकिन किसानों के अधिकारों के लिए और ज़मींदारों के संघर्ष में उनके आगे बढ़ने के लिए

अलग संगठन भी ज़रूरी थे। इसलिए सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना की गयी। आगे बेनीपुरी ने जयप्रकाश नारायण जी के प्रसंग में लिखा है : सोशलिस्ट पार्टी के नाम के पीछे 'काँग्रेस' जोड़ना मुझे जँचता न था किन्तु उनकी दलीलों ने यह आपत्ति भी दूर कर दी (4/87)। इस लेख से ऐसा प्रतीत होता है कि 'सोशलिस्ट पार्टी' के नाम के साथ 'काँग्रेस' शब्द जोड़ने पर **जयप्रकाश नारायण** ही ज़्यादा ज़ोर दे रहे थे। फिर चुनाव हुए। काँग्रेसी मन्त्रिमण्डल बने। किसानों और ज़मींदारों का संघर्ष और तेज़ हुआ और एक हद तक सोशलिस्टों और काँग्रेसी नेताओं में भी टक्कर हुई।

समाजवादी पार्टी 'जनता' (15 अक्टूबर 1937) नाम से साप्ताहिक बेनीपुरी के सम्पादन में निकाल रही थी। वह किसानों का बराबर समर्थन कर रही थी। ज़मींदारों के जवाब में समाजवादी पार्टी ने किसानों की विशाल रैली पटना में आयोजित की (4/81)। इस समय मज़दूर भी आगे बढ़ रहे थे। डालमियानगर में हड़ताल हुई। अब समाजवादी पत्रकारों ने पूँजीपतियों की आलोचना भी शुरू की। बेनीपुरी कहते हैं : जब हमने पूँजीपतियों के ख़िलाफ़ लिखना शुरू किया, उन्होंने हमें विज्ञापन देना बन्द कर दिया (4/92)। बिहार में बकाश्त आन्दोलन चला। राहुल जी किसान आन्दोलन में सक्रिय भाग ले रहे थे। उन्हें गिरफ़्तार किया गया चोरी के अपराध में। बेनीपुरी ने लिखा : दिन-रात चुनावों की धूम है। काँग्रेस की इज़्ज़त बचाएँ या अकेले-दुकेले व्यक्तियों पर हुए प्रहार, दुर्व्यवहार, सज़ा, जुर्माना आदि पर नज़र डालें। और सबसे बड़ा अपराध तो यह है कि इस आदमी ने किसान सभा में शामिल होने की गुस्ताख़ी की है। फिर इसकी ओर क्यों आँख उठाई जाए?

यदि राहुल बाबा ने गाँधी सेवा-संघ के सेवकों में नाम लिखाया होता या काँग्रेस गाँधीवादी गुट में शामिल हुए होते तो न जाने आज उन्हें कहाँ तक उछाल दिया होता। वृन्दावन के गाँधी महोत्सव में उनके नाम का एक फाटक भी बन गया होता तो आश्चर्य नहीं!

लेकिन नहीं, इस आदमी ने गुस्ताख़ी की। इसे सज़ा मिलनी चाहिए। अरे तो यह पुराना विद्रोही है। क्या इसके पहले इसने गाँधीवाद की खिल्ली नहीं उड़ाई थी। काँग्रेसी मन्त्रिमण्डल का भण्डाफोड़ नहीं किया था? क्षमा? गाँधीवाद में क्षमा का नाम नहीं। नारीमन खरे भुगत चुके—सुभाष भुगत रहे हैं। राहुल को ही क्यों छोड़ा जाए? (6/323-24)। किसानों के असन्तोष को शान्त करने के लिए काँग्रेसी नेताओं ने ज़मींदारी ख़त्म करने की योजना बनाई। ख़त्म करने का मतलब था : जनता के पैसे से ज़मींदारी खरीदना और फिर धनी किसानों में उन्हें बाँट देना। बेनीपुरी ने लिखा : बिहार के किसान सरकार की इस उदारता के लिए कृतज्ञ नहीं हो सकते। बिहार की प्रान्तीय किसान सभा और अखिल भारतीय किसान सभा ने स्पष्ट कर दिया है कि ज़मींदारों को किसी कदर का मुआवजा या क़ीमत देने के वह ख़िलाफ़ है। वह ज़मींदारी का नाश चाहती है। उससे

सौदा नहीं करना चाहती। इसके सिवा किसान क़र्ज़ के बोझ से परेशान हैं। वे कोई और बोझ बर्दाश्त नहीं कर सकते (6/324)। गाँव में सबसे सताए हुए लोग खेत-मज़दूर थे। दरभंगा ज़िले के जगदीशपुर गाँव के खेत-मज़दूरों के बारे में बेनीपुरी ने लिखा : युगों से जिन्हें चूस-चूसकर, जिनकी एक-एक धूर ज़मीन छीनकर बेकश और दरिद्र बना दिया गया। ये खेत-मज़दूर हैं, तुम्हें मुफ़्त की बेगारी देनी होगी। तुम जो ख़ून सुखा कर कमाओगे हमारा होगा और तुम भूखों मरो—मालिक का यही हुक्म था। जगदीशपुर के खेत-मज़दूरों ने ज़रा-सा 'ना' कहा और उस दिन ज़मींदारों ने घातक शस्त्रों-भाले, गण्डासे, बर्छी और बन्दूक़ों से लैस होकर जगदीशपुर पर संगठित हमला कर दिया। घायलों में 40 वर्ष की एक स्त्री और 10 वर्ष का एक बच्चा भी था। इस तरह के अत्याचारों को काँग्रेसी नीति से शह मिल रही थी। धारासभा में काम रोको प्रस्ताव पास किया गया। श्रीकृष्ण सिंह ने कहा : यह सार्वजनिक महत्त्व की घटना नहीं है। उस प्रस्ताव का विरोध किया। बेनीपुरी जी कहते हैं : यही चीज़ है जो ज़मींदारों को शह देती है। ख़बर है सरकार अपराधियों को ढूँढ़कर उन्हें सज़ा दिलाने में भी ढिलाई दिखा रही है (6/327)।

बेनीपुरी ने इन दिनों एक बड़ा यह काम किया कि अपने पत्र साप्ताहिक 'जनता' (पटना) के माध्यम से नेपाल में राणाशाही के ख़िलाफ़ ज़बर्दस्त आन्दोलन चलाया। उन्होंने नेपाल में 'जनता' के माध्यम से आज़ादी के आन्दोलन को वेग दिया। ज़मींदारी और पूँजीवाद के ख़िलाफ़ सशक्त आन्दोलन चलाया और समाजवादी आन्दोलन को गति दी। लेकिन जो लोग 'जनता' पढ़ते थे, उससे सम्बन्ध रखते थे, उन पर दमन-चक्र भी चलाया गया। 'जनता' के एक लेख की प्रतिलिपि रखने के कारण **गंगालाल** नामक युवक को कोड़े लगाए गये। फिर गोलियों से उड़ा दिया गया। इसी तरह **दशरथ चन्द्र** नाम के युवक को गोली से उड़ा दिया गया। वह **शिवानन्द** के नाम से 'जनता' में समाचार आदि भेजा करता था (4/93)। जब लोग निष्ठा के साथ किसी उद्देश्य के लिए काम करते हैं, तब परेशानियों का मुक़ाबला दृढ़ता से करते हैं। **'जनता'** की उन दिनों की याद अब भी मन में उत्साह भर देती है। कहीं से काग़ज़ का जुगाड़ किया, कहीं से रोशनाई का, किसी तरह 'जनता' निकली तो डाक ख़र्च के लिए पैसा नहीं। फिर मित्रों की जेब टटोलते फिरे (उपर्युक्त)। युद्ध शुरू हुआ। काँग्रेसी मन्त्रिमण्डल हट गये और सरकार ने 'जनता' को दबाने का प्रयत्न किया। नेपाल सम्बन्धी लेखों के कारण वह घबराई हुई थी। क्योंकि गोरखों को फ़ौज में भर्ती किए बिना युद्ध में जीतना मुश्किल था और राणाओं ने उस पर दबाव डालना शुरू किया (उपर्युक्त)। 1857-58 में भी नेपाल के राणाशाही ने अंग्रेज़ों की सहायता की थी। साम्राज्य-विस्तार में नेपाल के ग़रीब लोगों को फ़ौज में भर्ती करके अंग्रेज़ अपना स्वार्थ सिद्ध करते थे। इसलिए राणाशाही के इशारे पर वह जनता को दबाए, यह स्वाभाविक था।

समाजवादी पार्टी और मार्क्सवादी

युद्ध छिड़ने पर इस बात की सम्भावना थी कि सभी प्रगतिशील दल मिलकर अंग्रेज़ी राज का विरोध करें। इस समय सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट दोनों मिलकर काम कर रहे थे। सुभाषचन्द्र बास भी इनके साथ होते तो बहुत बड़ी शक्ति अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ खड़ी हो जाती। बेनीपुरी के अनुसार बोस के अग्रगामी दल का उद्देश्य यह बतलाया गया था कि वह सभी प्रगतिशील शक्तियों को एक मंच पर एकत्रित करने की चेष्टा करेगा! किन्तु उसके कार्य कुछ दूसरी ही दिशा में बढ़े जा रहे थे (3/345)। इस स्थिति में जयप्रकाश नारायण और कम्युनिस्ट पार्टी के महासचिव पूरनचन्द्र जोशी ने एक वक्तव्य निकाला। उसमें अंग्रेज़ों के विरुद्ध लड़ने की जो तजबीज़ थी, उसका समर्थन बेनीपुरी ने किया और आशा प्रकट की कि काँग्रेस में जो जड़ता है, वह दूरी होगी। (उपर्युक्त)। युद्ध छिड़ने से पहले बेनीपुरी ने मार्च 1939 में 'लाल चीन' पुस्तक लिखी थी। अपने 'दो शब्दों' में उन्होंने सहायता करनेवालों से पूरनचन्द्र जोशी का नाम लिया है। इसकी भूमिका जयप्रकाश नारायण ने लिखी थी। उसमें उन्होंने भारत से चीन की तुलना की थी। वहाँ कैसे बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ, इसकी ओर उन्होंने ध्यान दिलाया था। समाजवादियों और राष्ट्रवादियों को मिलाकर जापान से लड़ना चाहिए था, इस बात पर उन्होंने ज़ोर दिया। बेनीपुरी ने इस बात पर ज़ोर दिया कि क्रान्ति की सफलता के लिए योग्य नेतृत्व आवश्यक होता है। माओ आदि के नाम गिनाने के बाद उन्होंने कहा : ज़रा इस कसौटी पर हम अपने को तौलें तो! 'क्रांति' चिल्लाने से कया होता है? हम अपने दिल में तो क्रांति बिठाएँ और ज़िन्दगी में तो उसे उतारें! (6/19) पुस्तक की भूमिका में बेनीपुरी ने लिखा था : 'लाल चीन' की तरह 'लाल रूस' के लिखने में भी मेरे प्रमुख प्रेरक रहे हैं साथी श्रीजयप्रकाश नारायण जी (6/112)। रूस के अर्थतन्त्र में भारी उद्योगधन्धों की भूमिका पर उन्होंने विशेष ज़ोर दिया था। आर्थिक विकास जनता के लिए किया गया था। जन-जीवन में जो परिवर्तन हुआ, वह स्त्रियों के नये जीवन में भी दिखाई देता था। जातीय समस्या पर बेनीपुरी ने विशेष ध्यान दिया। लिखा कि जारशाही ने जिन जातीय प्रदेशों को विभाजित कर दिया था, उन्हें नये रूस में फिर संयुक्त किया गया (6/162)। सबसे बड़ी बात यह कि रूस हारेगा नहीं, यह दृढ़ विश्वास बेनीपुरी को था। भूमिका में तारीख़ 1942 पड़ी है। इस समय जर्मन फ़ौजें रूस के भीतर घुसती चली जा रही थीं। बहुत से लोग कह रहे थे रूस हारेगा। जैसा कि हिटलर ने कहा था—6 हफ़्ते में इसका नामोनिशान नहीं रहेगा। बेनीपुरी ने लिखा है : ऐसी बातों पर मुझे हँसी आती थी। क्योंकि मैं जनता हूँ। युद्ध सम्बन्धी-अज्ञान का यह नतीजा है। 6 हफ़्ते की क्या बात—यह आठवाँ महीना जा रहा है और आज भी रूस अजेय है, नहीं आज वह विजय की ओर है, और मेरा दावा है—नात्सीवाद की क़ब्र लाल रूस साबित होकर रहेगा (6/112)। रूसी क्रान्ति पर बेनीपुरी ने एक अलग से भी पुस्तक लिखी थी। उसमें उन्होंने फ्रांसीसी राज्य क्रान्ति को याद किया।

उस क्रान्ति में किसानों ने आगे बढ़कर हिस्सा लिया था, परन्तु सत्ता पर अधिकार किया पूँजीपतियों ने। रूस में वाल्शेविकों और मज़दूरों ने, किसानों ने कैसे काम किया, इसका विस्तृत वर्णन उन्होंने किया। जो गुलाम जातियाँ थीं वे अपनी जाति के लिए लड़ीं और उन्होंने भी क्रान्ति में सहयोग किया (06/316)। युद्ध शुरू होने से कुछ पहले समाजवादी पार्टी की कार्य-समिति के मसानी, लोहिया, अच्युत पटवर्धन और अशोक मेहता ने इस्तीफ़ा दे दिया। बेनीपुरी के अनुसार इनके ख़िलाफ़ पार्टी के रैंक फ़ाइल में बड़ा ही असन्तोष था और यदि पार्टी का विशेष अधिवेशन होता तो शक है कि ये बिना किसी दबाव के फिर कार्य समिति में पहुँच भी पाते (6/354)। सोशलिस्ट पार्टी को यहाँ बेनीपुरी ने काँग्रेस साम्यवादी पार्टी कहा है। लगता है कम्युनिस्ट पार्टी की तरह सोशलिस्ट पार्टी भी इण्टरनेशनल से सम्बन्धित थी। लोहिया आदि ने इस्तीफ़ा इस विषय पर दिया था कि ये बाहर की पार्टी से जुड़ी हुई है। बेनीपुरी ने लिखा : किसी पार्टी से इसलिए असहयोग नहीं किया जाए क्योंकि वह पार्टी किसी अन्तर्राष्ट्रीय पार्टी से सम्बन्ध रखती है, एक भोदी दलील है। साम्यवाद राष्ट्रीय नहीं हो सकता। राष्ट्रीय साम्यवाद तो नाज़ीवाद है। साम्यवाद एक अन्तर्राष्ट्रीय विचारधारा है, जिसके लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का होना लाजिमी है। हाँ, इसका हेड आफिस मास्को में न होकर बम्बई में ही क्यों न हो (उपर्युक्त)। जर्मनी ने पोलैण्ड पर हमला किया। उसी दिन बेनीपुरी कहते हैं : इसे संयोग ही समझिए, प्रान्तीय काँग्रेस कार्य समिति ने अपने ही वामपक्ष पर धावा बोल दिया। वामपक्ष के लोग चुनाव वाले पदों से वंचित कर दिए गये। बिहार साम्यवादी पार्टी के प्रधानमन्त्री श्री किशोरी प्रसन्न सिंह के प्रखर बलिदान भावना का लोहा उनके कट्टर दुश्मन भी मानते हैं, इस अनुशासन चक्र से वे भी न बचे। जयप्रकाश बाबू से कैफ़ियत माँगी गयी है। जिसे कार्य-समिति में शामिल होने का निमन्त्रण मिला है उससे कैफ़ियत! (6/376)। सुभाषचन्द्र बोस को सुनने के लिए पटना में बहुत बड़ी सभा हुई। लेकिन सभा भंग कर दी गयी। पत्थर बरसाए गये, जूते फेंके गये। लाटियाँ चलाई गयीं। सभा मंच और उसके इर्द-गिर्द ख़ून के फ़व्वारे फूटे और यह सब हुआ, 'गाँधीवाद ज़िन्दाबाद' के पोस्टर के नीचे और 'राजेन्द्र बाबू की जय' के नारे के बीच में (6/373)। लेकिन अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी ने जब नात्सी जर्मनी के ख़िलाफ़ प्रस्ताव पास किया तब बेनीपुरी ने उसका स्वागत किया। लिखा : नाज़ीवाद की बर्बरता और पाशविकता को देखते हुए सिवा बदमिजाज लोगों के कौन उसकी विजय की इच्छा रखेगा (6/380)। रूस और जर्मनी ने एक दूसरे पर हमला न करने की सन्धि की। पूँजीवादी अख़बारों ने लिखा : रूस जर्मनी से मिल गया है। बेनीपुरी ने इसका खण्डन करते हुए कहा : रूस चेकोस्लोवाकिया की रक्षा के लिए ब्रिटेन से कन्धे भिड़ाकर लोहा बजाने को तैयार था। पर ब्रिटेन ने ऐसी सन्धि नहीं की। बेनीपुरी का कहना था : आज यदि ब्रिटेन फ्रांस और रूस की सन्धि हुई रहती तो ब्रिटेन दुनिया की राजनीति का नेता होता। पर आज हम देखते हैं--दुनिया की राजनीति का विस्तार स्टालिन के हाथों में है (6/375)। इस

सम्पादकीय का शीर्षक है 'संसार का नेता रूस।' अन्तिम वाक्य जापान के बारे में है—पर जापान की अब ख़ैर नहीं। हमला न करने की सन्धि का मतलब यह नहीं था कि जर्मनी रूस पर हमला न करेगा। बेनीपुरी ने सावधान किया : यह भी न समझा जाए कि रूस निरापद हो गया। अतः उसे पग-पग की राह फूँक कर रखनी होगी (6/375)। एक सारगर्भित वाक्य अमेरिका के बारे में है—और जिस तरह पिछले महासमर के समय तटस्थ रह कर अमेरिका समृद्धिशाली बन गया, आज उसके ऋण के बोझ से दुनिया के सभी देशों की गर्दनें झुकी हुई हैं (6/374)। ये गर्दनें दूसरे महायुद्ध के बाद कुछ और झुकनेवाली थीं।

मार्क्सवाद से अपने सम्बन्ध के बारे में जयप्रकाश ने लिखा था : लोग मुझसे पूछते हैं क्या काँग्रेस सोशलिस्ट पार्टी मार्क्सवादी दल है? वे जानना चाहते हैं कि वे मार्क्सवादी समाजवाद को मानते हैं या गाँधीवादी समाजवाद को। मेरा उत्तर है कि हम मार्क्सवादी दल के हैं। और मार्क्सवादी समाजवाद को मानते हैं (*जयप्रकाश की विचारधारा*, पृ. 48)। भारत के सामने मुख्य प्रश्न स्वाधीनता का था। जयप्रकाश ने लिखा : सबसे पहले पूर्ण राजनीतिक स्वाधीनता की आवश्यकता है। दूसरे शब्दों में भारत का स्वतन्त्र राष्ट्र बन जाना आवश्यक है। ब्रिटिश शासन के कायम रहते हुए समाजवाद की स्थापना नहीं हो सकती, इसे दोहराने की आवश्यकता नहीं है (पृ. 231)। काँग्रेस में समाजवादियों की भूमिका मुख्य रूप से यह थी कि उन्होंने बराबर समझौते की नीति की रोकथाम की (पृ. 86-87)। सबसे बड़ा समझौता 1935 में काला क़ानून की स्वीकृति थी। उस क़ानून के अनुसार काँग्रेस चुनाव लड़ी और उसने मन्त्रिमण्डल बनाया। समाजवादियों ने मन्त्रिमण्डल बनाने का विरोध किया था (पृ. 85)। इससे साबित यह हुआ कि काँग्रेसी नेता अंग्रेज़ों से समझौता न करें इसके लिए उनका विश्वास न किया जा सकता था। समाजवादियों को वैकल्पिक नेतृत्व देने के लिए तैयार रहना चाहिए था।

आज़ादी का स्वरूप

काँग्रेसी नेताओं ने मुस्लिम लीग और अंग्रेज़ों से समझौता किया। देश का बँटवारा हुआ। जयप्रकाश ने लिखा : बँटवारे को क़बूल करके काँग्रेस ने सिर्फ़ अधकचरी आज़ादी पाई (*जयप्रकाश की विचारधारा*, पृ. 94)। समाजवादियों ने विधान परिषद् का बहिष्कार किया। बहिष्कार की नीति के बारे में जयप्रकाश ने लिखा : बहिष्कार करके हम देश को सिर्फ़ जता देना चाहते थे कि अंग्रेज़ों के साथ समझौता बुनियादी तौर पर ग़लत हुआ। उस समझौते को पूरा-पूरा नामंज़ूर करना चाहिए था (पृ. 94)।

स्वाधीनता और सम्प्रदायवाद

काँग्रेस को जो करना चाहिए था वह जयप्रकाश नारायण ने बताया। समझौते फाड़कर अन्तरिम सरकार और विधान परिषद् से काँग्रेस को निकल आना चाहिए था

और जनता द्वारा चुनी गयी सच्ची विधान परिषद् बुलाई जानी चाहिए थी। तभी वह विधान परिषद् इन्क़लाबी ताक़त का केन्द्र होती और आख़िरी मुक़ाबले के लिए अंग्रेज़ों को चुनौती दे पाती। वैसी विधान परिषद् का सोशलिस्ट पार्टी पूरा सहयोग करती और उसके फ़ैसले को अमल में लाने की पूरी ज़िम्मेदारी लेती (*जयप्रकाश की विचारधारा*, पृ. 95)। काँग्रेसी नेताओं का कहना था : वैसा करने से गृहयुद्ध होता और पाकिस्तान मंजूर कर लेने से हम उस युद्ध से बच जाएँगे। समाजवादियों का कहना था—पहले तो हमें उस ख़तरे को लेना चाहिए जो दूसरे पाकिस्तान को क़बूल करने से वह ख़तरा दूर नहीं होगा, बल्कि बढ़ जाएगा (पृ. 95)। हुआ ऐसा ही।

स्वाधीनता के पहले मुस्लिम सम्प्रदायवाद प्रमुख था। पाकिस्तान बनने के बाद शेष भारत में हिन्दू सम्प्रदायवाद प्रमुख बन गया। जयप्रकाश नारायण ने दिल्ली में देखा सड़कों पर फ़ौज के सिपाही खड़े हैं। मशीनगनें हैं, फौजी लारियाँ हैं, राइफलें लिये सैनिक हैं। लेकिन उनके सामने क़त्ल को रहा है और वे तमाशा देख रहे हैं (पृ. 284)। जयप्रकाश नारायण ने 1857 के संघर्ष को याद किया। उसके बाद जो शहीद हुए उन्हें याद किया और प्रश्न किया 90 वर्षों से आज़ादी की जो लड़ाई हमने लड़ी, सन् 57 से जो बड़ी-बड़ी क़ुर्बानियाँ हम करते आये, हमारी बहनों ने जो बेइज़्ज़तियाँ उठाईं, हमारे भाइयों ने माता की वेदी पर अपनी जानों की बलि चढ़ाई, सरदार भगत सिंह और उनके साथियों ने, बंगाल में क्रान्तिकारियों ने, बिहार के बैकुण्ठ शुक्ल ने, कहाँ तक गिनाऊँ, हज़ारों नौजवानों ने जो अपने को देश पर निसार कर दिया, मिटा दिया, उसका क्या हश्र यही होनेवाला था (पृ. 284)। यही हश्र होनेवाला था और जयप्रकाश को यह पहले से मालूम होना चाहिए था। बेनीपुरी ने बार-बार बताया था—काँग्रेसी सरकार में किस तरह से जनतन्त्र की रक्षा की जा सकती है। किसानों और मज़दूरों पर किस तरह के अत्याचार किए जा रहे थे। इसलिए कांग्रेस जब विधान परिषद् मंजूर कर रही थी, अंग्रेज़ों का थोपा हुआ समझौता मंजूर कर रही थी, तब वैकल्पिक नेतृत्व के लिए प्रयत्न करना चाहिए था। परन्तु इसके लिए पहले से तैयार नहीं की गयी थी।

हिन्दू सम्प्रदायवाद के बारे में जयप्रकाश ने कहा—दंगों में जिन लोगों ने भाग लिया था उनके सामने एक तस्वीर थी, बड़ी लुभावनी तस्वीर! वह तस्वीर थी हिन्दू राज्य क़ायम करने की। यह सुनने में अच्छा लगता है। लेकिन सोचिए तो रहस्य खुले—हिन्दू राज क्या है। उसमें सिक्ख क्यों रहेंगे। हरिजन क्यों रहेंगे? पारसी और ईसाई क्यों रहेंगे? हिन्दुओं में भी किसका राज—मराठों का या राजपूतों का? हिन्दू राज एक धोखा है। यह सर्वनाश का रास्ता है (पृ. 286)। प्रादेशिक अलगाववाद की भावनाएँ बढ़ीं। हिन्दू सम्प्रदायवाद के साथ और दूसरे सम्प्रदायवाद थी बढ़े। इनमें सिक्ख सम्प्रदायवाद प्रमुख था। ये सारी बातें रोकी जा सकतीं अगर काँग्रेसी नेता अंग्रेज़ों से समझौता न करते। सम्प्रदायवाद के साथ बिरादरीवाद भी बढ़ रहा था। जयप्रकाश ने लिखा : आज काँग्रेस की हुक़ूमत है। राष्ट्रीय सरकार है तो भी हमारे प्रान्त में क्या हो रहा है। राजपूत,

भूमिहार, कायस्थ, यादव, कुर्मी जाति की पार्टियाँ बन रही हैं। आपस में फूट है, तू-तू मैं-मैं है। लोग तबाह हैं। (उपर्युक्त) यह बिरादरीवाद आज कितना आगे बढ़ गया है, यह सभी लोग देख सकते हैं और इसका बढ़ना भी 1947 के समझौते से जुड़ा हुआ है।

मुस्लिम लीग के साथ बहुत से मुसलमान थे परन्तु लीग को अंग्रेज़ बढ़ावा दे रहे थे जिससे वह वास्तविक आकार से बहुत बड़ी दिखाई दे रही थी। जयप्रकाश ने कहा : पंजाब में जहाँ मुसलमानों की आबादी 70-80 सैकड़े तक है उन जगहों में भी जिन्ना को मीर जाफर कहा, किन्तु मैंने जिन्ना या लीग को सभी मुसलमानों का प्रतिनिधि नहीं माना। काँग्रेस के अन्दर भी मुसलमान हैं। और बड़े-बड़े मुसलमान हैं। क्रान्तिकारी आन्दोलन में रामप्रसाद फाँसी पर चढ़े तो उनके साथ अशफ़ाक भी फाँसी पर चढ़े। आज़ाद हिन्द फ़ौज में सहगल थे तो शाहनवाज भी थे। हमारी पार्टी में ऐसे मुसलमान हैं, जिन पर हमें नाज है। फिर हम मुस्लिम लीग और मुसलमान को एक कैसे समझते हैं? (पृ. 292-293)। काँग्रेसी नेता कह रहे थे—अंग्रेज़ों से लड़ने की ज़रूरत नहीं है। वे ख़ुशी से अहिंसात्मक ढंग से हमें स्वराज दे देंगे। भारत छोड़कर अपने देश चले जाएँगे। उस समय समाजवादियों और दूसरे उग्रपंथियों को खुलकर काँग्रेसी नेतृत्व का विरोध करना चाहिए था। काँग्रेस के विकल्प के रूप में समाजवादी पार्टी नहीं, वरन् हिन्दू सम्प्रदायवाद उभर रहा था। जयप्रकाश ने कहा था : देश में एक अजीब ताक़त पैदा हो गयी है। उस ताक़त ने दिल्ली में 10 दिनों तक गज़ब मचा रखा था। वह मुसलमानों की ताक़त नहीं, वे तो पनाह माँग रहे थे—भागे जा रहे थे, ख़तरा था उन हिन्दुओं से, उन सिक्खों से जिन्होंने लूटमार मचा रखी थी। जिन्होंने यह प्रतिज्ञा कर रखी थी कि हुकूमत को जनता के हाथों में जनता के प्रतिनिधियों के हाथों से छीन लेंगे। वे सरेआम कहते थे कि हम बर्मा की हालत यहाँ भी करेंगे। गाँधी और जवाहर की लाशें दिल्ली की सड़कों पर होंगी (पृ. 299-300)।

जयप्रकाश का कहना था कि तुरन्त क़ानून बनाना चाहिए। कोई भी संस्था फिरके या धर्म के नाम पर राजनीतिक क्षेत्र में काम नहीं कर सकती (पृ. 308)। ऐसा क़ानून नहीं बना। जात-बिरादरी और सम्प्रदायवाद के आधार पर पार्टियाँ बनीं, चुनाव लड़े गये, उन्होंने सरकार बनाई, हत्याकाण्ड रचे गये, दंगे हुए, हज़ारों लोग बेघर-बार हुए या मारे गये। ये सब अंग्रेज़ों से समझौते का परिणाम था। इससे भी बड़ा ख़तरा यह था—जयप्रकाश के शब्दों में : सबसे ख़तरा तो उन लोगों से है, जो हुकूमत के अन्दर रहते हुए भी संघ के हमदर्द हैं। बिहार के कुछ बड़े पुलिस अफ़सरों पर भी यह इल्जाम है। उसका एक सबूत भी हमारे पास है। बिहार में संघ का संचालक कोई जोशी नाम का आदमी था। भारत सरकार ने संघ को ग़ैरक़ानूनी घोषित किया। उसके तीन दिनों बाद जोशी के घर की तलाशी हुई। अंग्रेज़ों के जमाने में तुरत तलाशी ली जाती थी। इसलिए कि उन्हें क्रान्तिकारियों को दबाना था। अब सम्प्रदायवादियों को दबाना नहीं था। इसलिए

तलाशी लेने में मुस्तैदी नहीं दिखाई दी। यह कैसी बेढंगी बात! तीन दिनों के बाद हमारे पुलिस अफ़सरों की नींद टूटी (पृ. 308)।

पूँजीवादी जनतन्त्र का स्वरूप

चुनाव के बिना जनतन्त्र नहीं। चुनाव पार्टी के भीतर होते हैं और पार्टी के बाहर। विधान सभाओं में प्रतिनिधि चुनने के लिए होते हैं। इसी समय काँग्रेस के भीतर चुनाव हुए। उसका विवरण बेनीपुरी ने दिया है : काँग्रेस पार्टी के नेता के चुनाव में क्या-क्या नहीं हुआ। श्री बाबू और अनुग्रह बाबू में चालीस वर्षों की दोस्ती थी। दोनों ऐसे लड़े कि कुत्ते भी मात! कौन-कौन से कुकर्म नहीं किए गये। लाखों रुपये बँटे। सदस्यों की चोरी हुई। कुछ बिचारे पिट भी गये। दिल्ली से लोग आये। शान्त कहाँ तक करते। आग लगाकर गये (8/351)। यह अप्रैल 1957 की बात है। इससे पहले बिहार में चुनाव हुए। समाजवादी पार्टी के विरोधियों के कारनामों का विवरण बेनीपुरी ने अपनी **डायरी** में लिखा : मन्दिर में हाथ उठाकर शपथ दिलवाई गयी, बाबू लोग ग़रीबों को घर-घर घूमकर धमकाने लगे कि तुम लोग वोट देने नहीं जाओ—यदि जाओगे तो देख लेना। बुरी से बुरी धमकियाँ, गन्दी से गन्दी गालियाँ! ग़रीब लोग क़तार बाँधकर वोट देने गये। बाबुओं का पारा गर्म हुआ। बेनीपुरी जिस दरवाज़े पर ठहरे हुए थे उसके सामने ही एक बाबू ने दो ग़रीबों को, जिन्होंने बेनीपुरी को वोट दिया था, पीटा और कोठरी में बन्द कर दिया। बेनीपुरी जब पुलिस के पास गये तब छोड़े गये। जात-बिरादरी के भेदभाव से उन्होंने पूरा लाभ उठाया। हर जाति के दरवाज़े पर उन्हीं की जाति के कार्यकर्ता भेजते और कोशिश करते कि वह उनके कुटुम्बियों में हो। रुपयों का भी वितरण उनकी ओर से हुआ। कनफूक्का गुरुओं की देहात में बड़ी क़द्र है—उन्हीं के कन्धे पर लोगों को वैतरणी पार करना है। फिर उनके आग्रह को कैसे काटा जाए, छोटी जाति के लोग ग़रीब होते हैं। गाँवों में उनके जो नेता हैं, उन्हें 20 से 50 रुपये में मज़े से ख़रीद लिया जा सकता है। हर गाँव में दो-ढाई सौ रुपये ख़र्च कर अनर्थ कराया जा सकता है। पहले से तो ऐसा किया जाए तो भण्डा फूटे, किन्तु जिस रात उन्हें रुपये दिए गये उसी रात उन्होंने घूम-घूमकर अपने लोगों को अंटशंट बातों से बरगलाया और भोर में हमारे लिए अनर्थ कराया जा सका (7/72)। यह जनवरी 1952 की बात है।

1957 में जो चुनाव हुए उसमें बेनीपुरी जीत गये। अब पटना में एम.एल.ए. होकर क्वार्टर में रहना ज़रूरी था। क्वार्टर के लिए वह स्पीकर से मिले। उन्होंने कहा—किसी ख़ाली मकान में घुस जाइए। बेनीपुरी ने ऐसा करने से इन्कार किया। उन्होंने दरखास्त लिखवाई, उससे आफ़िसर ने किसी ब्लाक में मकान उनके नाम एलाट किया। किन्तु वह वहाँ गये तो देखा, एक हारे हुए उम्मीदवार का परिवार वहाँ डटा हुआ है। इस सिलसिले में उनके दोस्तों ने उन्हें कई क़िस्से सुनाए। बोले, यहाँ यही होता है। लोग घर छोड़ते नहीं। यहाँ तक कि किराए पर उठा देते हैं। जिनके नाम पर एलाट हुआ,

जब तक वे ज़बर्दस्ती नहीं करते, कोई टस से मस नहीं होता (7/350)। बेनीपुरी की प्रतिक्रिया यह थी, जिस विधान सभा के सदस्यों की यह हालत है, वहाँ से कोई अच्छा विधान कैसे निकल सकेगा! भगवान इस राज्य के रक्षक तुम्हीं हो (8/351)। चुनाव के बारे में बेनीपुरी का अनुभव यह था—हम आये दिन चुनावों में देखते हैं कि जिसके पास मोटरें हैं, अच्छे 'कैनवासर' हैं, कैनवासर रखने के लिए रुपये हैं, पोलिंग बूथ पर गर्मागर्म कचौड़ी और जलेबी खिलाने के लिए और वोटरों की जेब गरमाने के लिए साधन हैं, वह लस्तमपस्तम जीत ही जाता है (6/394)। ऐसा केवल भारत में ही नहीं होता, जो धनी देश हैं, वहाँ भी इस तरह की बातें होती हैं। अमेरिका आदि देशों में तो वोटों की दलाली एक ख़ासी आमदनी का जरिया हो गयी है (उपर्युक्त)। निष्कर्ष यह कि जबतक जन की यह विषमता है, तब तक जनतन्त्रवाद एक खोखला पदार्थ ही बना रहेगा। जब तक कुछ लोगों के पास अरब-खरब रुपये रहेंगे और कुछ लोगों की झोली में भूजी-भांग भी नहीं रहेगी यूँ तब तक यह ख़रीद-बिक्री चलेगी ही—चाहे लाख क़ानून बनाकर इसे रोका जाए (उपर्युक्त)। आर्थिक विषमता, पूँजीवाद जनतन्त्र की विशेषता है। पैसे में बड़ी ताक़त है। जिसके पास पैसा है, वह चुनाव जीतता है और वही जनतन्त्र चलाता है। इसीलिए मूल समस्या आर्थिक विषमता को दूर करने की है।

आर्थिक विषमता पूँजीपतियों और मज़दूरों की बस्तियों में देखी जाती है। हमारे यहाँ से जो इंग्लैण्ड जाते हैं वह लन्दन से पश्चिमी मोहल्लों की तड़क-भड़क, वैभव, आमोद-प्रमोद की कहानियों से हमारे कानों को भर देते हैं। किन्तु जिन्हें सत्य ढूँढ़ना हो वह ज़रा उसी लन्दन के पूर्वी मोहल्लों को देखे—उन गन्दे, तंग, बदबूदार और धुआँकश मोहल्लों को देखे, जहाँ यहाँ के जनसाधारण बसते हैं (6/372)। अमेरिकी जनतन्त्र को परखना हो तो एक ओर वहाँ अरबपतियों का निवासस्थान देखना चाहिए और दूसरी ओर मज़दूरों के आवास स्थान। मज़दूरों की दशा का वर्णन सिमक्लेयर नाम के अमेरिकी लेखक ने किया है। उनका 'जंगल बुक' बेनीपुरी को बहुत पसन्द था। उसके बारे में लिखा है : उनकी दुर्दशा पर आपके रोंगटे खड़े हो जाएंगे। हमने तो पढ़ा है और लोगों ने भी पढ़ा है। एक अन्य लेखक ने अमेरिकी मज़दूरों के बारे में लिखा था, यह अमेरिकन मज़दूरों के लिए भाग्य की बात है कि वह जवानी में ही चल बसते हैं। क्योंकि ऐसा होने से वह भीख माँगने, आत्महत्या करने, पागल बन जाने या चोर-उचक्के होने से बच जाते हैं (6/392-93)। जापान एशिया का बड़ा पूँजीवादी देश है। जापान के मज़दूरों को बहुत गन्दे और सर्वथा अस्वास्थ्यकर काठ के घरों में रहकर अपने दिन बिताने पड़ते हैं। मज़दूरों और मज़दूरनियों को कम से कम 10 घण्टे रोज टोकियो के कारख़ानों में काम करना पड़ता है। बाहर के स्थानों में बीस-बीस घण्टे तक काम करना पड़ता है। मज़दूरों के बच्चों, पाँच-पाँच वर्ष के बच्चों को भी 12-12 घण्टे तक दियासलाई के डिब्बे, खिलौने बनाने आदि का काम करना पड़ता है। पर वेतन उन्हें नहीं मिलता (6/393)।

समाजवादी पार्टी का विघटन

समाजवादी पार्टी क्रान्तिकारी पार्टी थी। उसे मार्क्सवाद में आस्था थी। वह अंग्रेज़ी राज और यहाँ ज़मींदारी प्रथा ख़त्म करके पूँजीवादी व्यवस्था बदल कर समाजवाद क़ायम करना चाहती थी। उसका विघटन देश के लिए हानिकारक था। उस विघटन का इतिहास बेनीपुरी की ग्रन्थावली में बहुत अच्छी तरह चित्रित है। जो लोग भी वर्तमान व्यवस्था को बदलना चाहते हैं, उन्हें उस विघटन के इतिहास पर ध्यान देना चाहिए।

विघटन का बहुत बड़ा कारण यह था कि आन्दोलन तो चलाए गये, पर संगठन, पार्टी निर्माण और पार्टी कार्यकर्ताओं की शिक्षा पर ध्यान नहीं दिया गया। जिस आन्दोलन के साथ संगठन का गठबन्धन न हो वह उस दीवार की तरह है जिसकी नींव न हो। दीवार, बालू की दीवार! बिहार के आन्दोलनों और संगठन के अभाव पर विचार करते हुए उन्होंने लिखा : विहार प्रान्तीय किसान सभा लगभग 10 वर्ष से काम कर रही है। जहाँ तक आन्दोलन का सवाल है, उसने वह सफलता प्राप्त की है जिस पर किसी भी संस्था को ईर्ष्या हो सकती है। बिहार के गाँव-गाँव में किसान सभा की धूम है। सभा के सभापति स्वामी सहजानन्द सरस्वती का नाम आज बिहार में सबसे अधिक जनप्रिय नाम है। किसान सभा के नारे बच्चों तक की ज़ुबान पर हैं—इंकलाब ज़िन्दाबाद, अंग्रेज़ी राज नाश हो। ज़मींदारी प्रथा नाश हो, किसका राज क़ायम हो—आदि गगनभेदी नाद जहाँ जाइए वहाँ सुनिए। बकाश्त सत्याग्रह के रूप में उसने प्रान्त के भिन्न-भिन्न ज़िलों में कितने मोर्चे भी लिये और विजय पर विजय उसे प्राप्त होती रही।

समाजवादी पार्टी के विघटन का एक कारण मध्य वर्ग से आये हुए अवसरवादी लोग थे। बेनीपुरी ने लिखा—पार्टी में कुछ तिकड़मबाज़ आ गये हैं और वह जयप्रकाश जी को भ्रम में डाल कर सारी पार्टी को जहन्नुम की ओर लिये चले जा रहे हैं। जयप्रकाश जी की वही हालत देख रहा हूँ, जो गाँधीजी की काँग्रेस में हुई। आज उनका काम है इन तिकड़मबाज़ों के लिए पैसे इकट्ठा कर देना—कल वे उनसे वोट इकट्ठे करवाएँगे और यदि वे विजयी हुए तो सारी सत्ता हथिया कर उनके लिए भी क्या वह किसी राजघाट की व्यवस्था नहीं कर देंगे? (8/31-32)।

नवम्बर 1955 में पार्टी की हालत यह थी, इसके एक-एक महारथी अलग होते जा रहे हैं। लोहिया ने अलग रागिनी छेड़ी है। कार्यकर्ता किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहे हैं।

समाजवादी शक्तियों को एक भारतीय संस्था में परिणत किया जयप्रकाश जी ने। जयप्रकाश जी ने भूदान के लिए जीवन दान दे दिया है। अभी तक पार्टी के सदस्य बने हुए थे। मुज़फ़्फ़रपुर में उस दिन कहने लगे अब सदस्यता भी छोड़ दूँगा (8/294)। स्वयं बेनीपुरी का यह हाल था—1945 में जब जेल में ही थे—मैंने एक बार गंगा से कहा था—क्यों न अब पार्टी तोड़ दी जाए। हम काँग्रेस में शामिल हो जाएँ और देश के नवनिर्माण के लिए हाथ बँटाएँ। गंगा ने कहा—इस बात को दोहराना नहीं तो लोग तुम्हारी नीयत पर शक करेंगे।

मैं चुप हो गया। किन्तु अब सोचता हूँ, क्या हमलोगों ने उस समय एक ग़लती नहीं की। उस समय 1942 की कमाई गयी प्रतिष्ठा हमारे साथ थी। हम काँग्रेस में बहुत कुछ और करा सकते थे। आज तो हम उस कमाई को भी धूल में मिला चुके। जयप्रकाश जी ने पार्टी से हट कर रही-सही इज़्ज़त भी हर ली (8/295)।

अप्रैल 1952 में बिहार सोशलिस्ट पार्टी का कन्वेशन पटना में हुआ। उसके चेयरमैन जयप्रकाश थे। उसमें रामनन्दन मिश्र और उनके समर्थकों ने जयप्रकाश का तीव्र विरोध किया। बेनीपुरी के अनुसार तीन दिन तक वह उन्हें गालियाँ देते रहे और झूठी, पाखण्ड भरी बातें करते रहे। आख़िर जयप्रकाश का धैर्य टूट गया। बैठक से बाहर जाकर वह रोए और फिर घोषित किया—बिहार पार्टी से मैं सम्बन्ध तोड़ रहा हूँ (8/93)।

समाजवादी पार्टी में विचारधारा का अभाव

विचारधारा के अभाव में समाजवादी पार्टी में संगठन का छिन्न-भिन्न होना अनिवार्य हो गया। अक्तूबर 1959 में बेनीपुरी ने जयप्रकाश नारायण को एक पत्र लिखा था, बेनीपुरी ग्रन्थावली का वह सर्वश्रेष्ठ दस्तावेज़ है। पार्टी कैसे टूट रही है और उसके सदस्य कैसे उसे बचाने के लिए लड़ रहे हैं, उसका जीता-जागता चित्र इस पत्र में है। बेनीपुरी ने लिखा था : यह पत्र बड़े हृदयमन्थन के बाद लिख रहा हूँ। मैंने अपने को राजनीति से तटस्थ-सा कर लिया है। प्रिय महावीर की हत्या के बाद तो मैं राजनीति से बिल्कुल निराश हो चुका हूँ। आपने भी तो राजनीति छोड़ दी है। फिर पार्टी के बारे में लिखा : प्रजा सोशलिस्ट पार्टी भारत में समाजवाद की रजत जयन्ती मनाने जा रही है। सुना है, अख़बारों में छपा पढ़ा है, उसमें आप भी सम्मिलित किए गये हैं। आप जाएँगे। और वहाँ आपके प्रवचन भी अवश्य होंगे। मैं चाहता हूँ जब आप यहाँ बोलें तो कुछ स्पष्टता से काम लें। यानी सन्तों की तरह शुभाशीष ही नहीं दें, चिन्तकों की तरह स्पष्ट बातें भी कहें कि पार्टी के लोगों को पार्टी और अपने बारे में कुछ सोच-विचार करने का सुअवसर मिले।

पार्टी की दुर्गति के बारे में बेनीपुरी ने कहा : मुझे प्रजा सोशलिस्ट पार्टी की दुर्गति पर बहुत क्षोभ होता है। मैंने एक बार आपसे कहा भी था कि पार्टी को इस स्थिति में लाने का श्रेय सिर्फ़ लोहिया को नहीं है। आपका इसमें सबसे बड़ा हाथ है। यूँ तो हम सभी दोषी हैं किन्तु हमारे गुण-दोष की क्या हस्ती? पार्टी आपने बनाई और आज जो उसकी स्थिति है, उसमें भी आपका उतना ही बड़ा हाथ है, जितना उसे भारत में प्रमुखतम स्थान दिलाने में। मेरे ख़याल से इसकी उन्नति और अवनति का श्रेय मुख्यतः आपके दो पलायनों पर है। एक बार आपने हज़ारीबाग़ से पलायन किया और यह पार्टी उन्नति की चोटी पर जा पहुँची। दूसरी बार आपने बोधगया में पलायन किया और यह पार्टी गड्ढे में जा गिरी।

मुझे यह देखकर बहुत दुख होता है कि जो पार्टी इतनी शानदार रही, इतने

शानदार काम किए, उसकी यह दुर्गति हो, जो कुष्ठ के रोगी की होती है। इस पार्टी की मौत भी शानदार होनी चाहिए। आपने इससे ऐसी मौत भी छीन ली। आज इसके अंग-अंग गल कर कट-कटकर गिर रहे हैं। पीब से, मवाद से, दुर्गन्ध से, जी मिचलाता है। नाक फटती है। आपके लिए उचित था कि आप पार्टी के साथियों को एकत्र करके इस पार्टी को भंग कर देते। फिर राजनीति से संन्यास लेते (6/417)। 'पाठक इस बात पर ध्यान दें', पार्टी की इस स्थिति में लाने का श्रेय सिर्फ़ लोहिया को नहीं है। आपका इसमें सबसे बड़ा हाथ है। पार्टी के भीतर यदि सुधारवाद से न लड़ा जाएगा। उसे ख़त्म न किया जाएगा तो कैसी भी क्रान्तिकारी पार्टी हो, उसका परिणाम, उसका हश्र यही होगा। गोर्बाचोव और येल्तिसिन! सोवियत संघ की बड़ी कम्युनिस्ट पार्टी के नेता थे। लोहिया और जयप्रकाश यदि पार्टी को भीतर से तोड़ सकते थे तो गोर्बाचोव और येल्तिसिन भी सोवियत संघ की महान् कम्युनिस्ट पार्टी को भीतर से तोड़ सकते थे। उन्होंने उसे तोड़ा और उसके साथ सोवियत संघ की समाजवादी व्यवस्था भी उन्होंने नष्ट कर दी। इससे लाभ हुआ साम्राज्यवाद को। भूदान से देश का उद्धार होनेवाला नहीं था। बेनीपुरी ने लिखा : आप अपने उन साथियों को नरक कुण्ड में छोड़कर अकेले भूदान की बछिया की दुम पकड़ कर उस पार निकल गये (6/417-18)। बेनीपुरी क्या करे? अपने बारे में उन्होंने लिखा : लेकिन इस पार्टी की दुर्गति देखकर मेरा कलेजा पसीज-पसीज उठता है—मेरी कई रातें अनिद्रा में ही कटी हैं। आप मेरी इस बात पर शायद यकीन करेंगे। अतः चाहता हूँ कि कहीं इस मिट्टी को शरण मिल जाए। आप यदि इसे शरण दिला सकें तो फिर क्या कहना (6/419)।

उस पत्र में उस क्रान्तिकारी बेनीपुरी के दिल का हाल दर्ज़ है जो ज़िन्दगी भर निष्ठा से एक सामाजिक उद्देश्य के लिए लड़ता रहा है। उस उद्देश्य की सिद्धि के लिए जिस तरह की पार्टी की ज़रूरत थी, उसके निर्माण में वह जूझता और खपता रहा है। अब वह पार्टी विसर्जित हो रही है, विघटित हो रही है। यह देखकर उसके क्षोभ का ठिकाना नहीं है। पत्र में जो तीखापन दिखाई देता है, वह इसी क्षोभ से उत्पन्न हुआ है। वह चारों ओर देखते हैं और अपने को असहाय महसूस करते हैं। इसलिए तीखापन और बढ़ जाता है।

पार्टी तो टूटेगी, टूट रही है। परन्तु वह चाहते हैं कि वह उसके अन्तिम साक्ष्य रहें। जयप्रकाश नारायण का बड़ा नाम है, बड़े नेता के रूप में वे विख्यात हैं परन्तु यहाँ रामवृक्ष बेनीपुरी उनसे बहुत बड़े दिखाई देते हैं। जहाँ तक पार्टी के प्रति, समाजवादी आदर्श के प्रति निष्ठा का प्रश्न है, उसके लिए लगन से, निस्वार्थ सेवा का प्रश्न है, वहाँ बेनीपुरी किसी भी बड़े नेता से हट कर नहीं हैं। समाजवादी पार्टी, समाजवादी आन्दोलन, समाजवादी व्यवस्था जहाँ भी इनमें कमज़ोरी आती है, जहाँ भी इनका विघटन होता है, वहाँ लाभ साम्राज्यवाद को होता है। भारत की समाजवादी पार्टी विघटित हुई, इससे साम्राज्यवाद को लाभ हुआ। सुसंगत ढंग से क्रांतिकारी आंदोलन चलाने की आवश्यकता

थी। साम्राज्यवाद और सामन्तवाद के अवशेष ख़त्म करके और स्वाधीनता प्राप्त करने की आवश्यकता थी। यह उद्देश्य समाजवादी पार्टी के विघटित होने से सिद्ध नहीं हुआ।

साम्राज्यवाद और पूँजीवाद : बेनीपुरी का चिन्तन

साम्राज्यवाद किस तरह विश्वव्यापी हुआ? साम्राज्यवाद का प्रसार पूँजीवाद का ही प्रसार है। उन्नीसवीं सदी के आख़िरी हिस्से में पूँजीवाद का एक नया विकास हो रहा था—वह साम्राज्यवाद की ओर बेतहाशा बढ़ रहा था। हिन्दुस्तान को गुलाम बनाने के बाद ब्रिटेन ने मिस्र पर क़ब्जा जमा लिया था और दक्षिण अफ्रीका में उसका एक विशाल साम्राज्य बन चुका था। फ्रांस ने उत्तरी अफ्रीका के ट्यूनिश और सुदूरपूर्व के टांकिन को हथिया लिया था। इटली अबीसीनिया में अपने पैर जमाने की कोशिश में लगा हुआ था। रूस ने मध्य एशिया की विजय के बाद मंचूरिया की ओर अपना ध्यान बँटाया था। अफ्रीका में और दक्षिणी सागर में जर्मनी के प्रथम उपनिवेश क़ायम हो चुके थे। इंग्लैण्ड के चंगुल से छुटकारा पा अमेरिका अब खुद पूर्वी एशिया में पंजे बढ़ा रहा था और फिलीपींस द्वीपसमूह उसके क़ब्जे में आ चुका था। जापान भी पड़ोसियों पर दाँत गड़ाये हुए था (5/136)। जितने बड़े-बड़े पूँजीवादी देश हैं, सब साम्राज्य क़ायम कर रहे थे। साम्राज्यवादियों की होड़ से ही दूसरे महायुद्ध की शुरुआत हुई परन्तु रूस इस पूँजीवादी व्यवस्था से निकल गया। एक ओर जर्मनी और इटली थे। दूसरी ओर इंग्लैण्ड और फ्रांस थे। यह साम्राज्यवादियों का युद्ध था। बेनीपुरी का कहना बिल्कुल सही था कि रूस का जितना बड़ा दुश्मन जर्मनी है, इंग्लैण्ड और फ्रांस से पूँजीवादी जनतन्त्र उससे रत्ती भर भी कम नहीं (6/374)। साम्राज्यवाद पूँजीवाद का वह रूप है, जिसमें बैंकों और ट्रस्टों की प्रधानता होती है। जिसमें पूँजी के निर्यात से मुनाफ़ा कमाया जाता है। दूसरे देश को गुलाम तो बनाया ही जाता है। बेनीपुरी कहते हैं : रोजा लुग्ज़मबर्ग ने अपने लेख में बताया कि किस तरह पूँजीवादी राज्यों, उपनिवेशों और प्रमुख क्षेत्रों के लिए पूँजी को देश से बाहर भेजने और कच्चे माल की प्राप्ति के लिए प्रतियोगिता होती है। संरक्षण की नीति की तह में क्या है? बैंकों और ट्रस्टों का प्रभाव इसमें किस तरह बढ़ रहा है। राष्ट्रों में क्यों शस्त्र-वृद्धि के लिए घुड़दौड़ हो रही है। ये सब चीज़ें नहीं हैं, ये जिन्हें अलग रखकर पूँजीवाद का विकास किया जा सकता था। ये तो उसकी ऐतिहासिक आवश्यकताएँ हैं—उसकी आख़िरी मंज़िल की सूचना देती हैं और इन बातों का ज्ञान मज़दूरों को होना ज़रूरी है। क्योंकि इन्हें बिना समझे साम्राज्यवाद से लड़ने के लिए न तो मज़दूरों में साफ़ दृष्टि आएगी और न पूरी ताक़त (5/169-70)। साफ़ दृष्टि आवश्यक है। जो चीज़ दृष्टि को धुँधला करती है उसे सुधारवाद कहते हैं। पूँजीवाद से न लड़ना उसे किसी-न-किसी रूप में प्रगतिशील बताना, मज़दूरों के संगठन को तोड़ना—ये सुधारवाद के लक्षण हैं। साफ़ दृष्टि होने के लिए सुधारवाद से लड़ना ज़रूरी होता है। बेनीपुरी जी ने लिखा था, "पिछले महासमर के समय तटस्थ रह कर अमेरिका समृद्धशाली बन गया (6/374)। वह

पूँजी के निर्यात से ही सम्भव हुआ था। पहले के साम्राज्यवादी देश अब अमेरिकी पूँजी पर निर्भर रहने लगे थे। उनकी यह निर्भरता दूसरे महायुद्ध के बाद और बढ़ी है। भारत जैसे तीसरी दुनिया के देशों की निर्भरता उनसे भी ज़्यादा है। एक ओर पूँजीवाद का नया विकास औद्योगिक पूँजी की जगह महाजनी पूँजी, बैंकों और ट्रस्टों की प्रधानता और दूसरी ओर सामन्तवाद को संरक्षण। पराधीन देशों में साम्राज्यवाद न केवल पुराने सामन्तवाद की रक्षा करता है, वरन् सामन्तवाद के रूप भी वहाँ क़ायम करता है। बेनीपुरी की यह बात याद रखनी चाहिए : बिहार की भूमि उर्वरा है। यहाँ के किसान सदा खुशहाल रहे। किन्तु इन खुशहाल किसानों पर कार्नवालिस ने ज़मींदारों का जुआ रखकर उन्हें दुर्गत की गाड़ी में जोत दिया (4/83)। इसलिए साम्राज्यवाद से लड़ने के लिए सामन्तवाद से भी लड़ना ज़रूरी होता है और दूसरे महायुद्ध के बाद जहाँ-जहाँ सामन्तविरोधी क्रान्तियाँ हुईं वहाँ-वहाँ सामन्तवाद की रक्षा करने के लिए अमेरिकी पूँजीवाद सबसे आगे बढ़कर आया।

भाषा, स्वाधीनता और समाजवाद

भारत जैसे बहुजातीय देश में स्वाधीनता आन्दोलन चलाना हो तो जनता की भाषाओं से काम लेना होगा। जब तक काँग्रेसी नेता अंग्रेज़ी का सहारा लिए रहे, तब तक स्वाधीनता आन्दोलन बहुत सीमित रहा। जब उन्होंने प्रादेशिक भाषाओं का सहारा लिया, उनके माध्यम से आन्दोलन चलाया, तब उसका विकास हुआ। प्रदेशों को अखिल भारतीय आन्दोलन चलाने के लिए एक केन्द्रीय भाषा की दरकार थी। वह काम हिन्दी से हुआ। इसीलिए गाँधी जी हिन्दी के सबसे बड़े समर्थक हुए। वह जानते थे कि हिन्दी के बिना अखिल भारतीय स्तर पर जनता को आन्दोलित नहीं किया जा सकता। जिस हद तक केन्द्रीय राजकाज में अथवा सामाजिक, राजनीतिक कार्यवाही में अंग्रेज़ी का व्यवहार होता है, उस हद तक स्वाधीनता सीमित होती है, जनतन्त्र सीमित होता है। जुलाई 1954 में बेनीपुरी ने 'नयी धारा' के अपने एक लेख का शीर्षक दिया था 'सभी भारतीय भाषाओं की जय' और लिखा था : कविवर दिनकर ने यह नारा दिया है और यदि हिन्दी को राष्ट्र-भाषा पद पर आसीन हम देखना चाहते हैं तो फिर सिर्फ़ जबान से नहीं, बल्कि तहेदिल से इस नारे को अपनाना पड़ेगा (3/159)। किन्तु हो यह रहा था कि हिन्दी के ख़िलाफ़ एक भारतव्यापी मोर्चा खड़ा किया गया था। अंग्रेज़ी के झण्डे के नीचे यह मोर्चा बनाया गया। शिक्षा-विशेषज्ञों का कहना था—अंग्रेज़ी के बिना ऊँची शिक्षा नहीं दी जा सकती (उपर्युक्त)।

दिसम्बर 1958 में बेनीपुरी ने लिखा था : हिन्दी के विरोधियों का मुख्य अखाड़ा बन गये हैं हमारे विश्वविद्यालय (3/467)। उन्होंने विश्वविद्यालयों के नाम गिनाए थे जहाँ हिन्दी की जगह अंग्रेज़ी शिक्षा का माध्यम थी। पटना विश्वविद्यालय तेज़ी से अंग्रेज़ी की ओर दौड़ रहा है और हिन्दू विश्वविद्यालय हिन्दी के समुद्र में अंग्रेज़ी के एक द्वीप

के रूप में काम करता रहे, नयी दिल्ली की नयी चेष्टा यह है (3/467)। हिन्दी बहुत बड़े प्रदेश में बोली जाती है। बीस करोड़ हिन्दी बोलते हैं। देवघर से जैसलमेर और जालन्धर से इन्दौर तक हिन्दी की ध्वजा फहरा रही है—कहने में कितना अच्छा लगता है। सुनकर गर्व से छाती फूलने लगती है। किन्तु बाहर की बात छोड़िए इस भूभाग के अन्दर भी हिन्दी की क्या स्थिति है, क्या ग़ौर से सोचा जा सकता है? बिहार, उत्तर प्रदेश, विन्ध्य प्रदेश, मध्य भारत, मध्य प्रदेश, राजस्थान, दिल्ली, पूर्वी पंजाब, हिमाचल प्रदेश—9 प्रदेशों की राज्य भाषा बनकर हिन्दी ने कितना गर्व अनुभव किया होगा (3/466)। परन्तु इस विशाल हिन्दी प्रदेश में अंग्रेज़ी का बोलबाला था। विश्वविद्यालयों के नीचे घोर अन्धकार छाया हुआ था। भारतीय प्रदेशों में हिन्दी प्रदेश निरक्षरता में सबसे आगे रहे हैं।

1937 में बिहार की सरकार ने निरक्षरता दूर करने के लिए आन्दोलन शुरू किया था। लेकिन बीस वर्ष के बाद उसने जो प्रगति की, बेनीपुरी जी के अनुसार वह नगण्य थी (3/234)। यह बात उन्होंने जून 1957 में लिखी थी। चालीस साल बाद स्थिति में कोई विशेष अन्तर नहीं हुआ। राजस्थान और बिहार भारत के सबसे पिछड़े हुए क्षेत्रों में हैं और इस पिछड़ेपन की एक निशानी है निरक्षरता। कुछ विद्वानों ने कहा : राजकाज के लिए हिन्दी को समर्थ करने के लिए संस्कृत के आधार पर उसमें नये पारिभाषिक शब्द बनाने चाहिए। पारिभाषिक शब्द संस्कृत से लेने पर मराठी, गुजराती, दक्षिण की भिन्न-भिन्न भाषाएँ बंगला, उड़िया, असमी आदि के लोगों के लिए सुविधा होगी। डॉ. रघुवीर ने एक कोष बनाया। उसका सबसे पहला विरोध हुआ, मध्य प्रदेश के मराठीभाषियों द्वारा। बेनीपुरी इस बात के समर्थक थे कि फ़ारसी के जो शब्द बोलचाल की भाषा में आ गये हैं, उन्हें स्वीकार करना चाहिए। उन्होंने मराठी से उदाहरण दिया : मराठी भाषा में फैलती उर्दू के अनेक शब्द ऐसे घुलमिल गये हैं कि देखकर आश्चर्य होता है। पूना में 'तिलक रस्ता है' तिलक पथ नहीं। सावरकर साहब संस्कृत के बड़े प्रेमी हैं किन्तु उनकी पुस्तक का नाम है 'हिन्दूपद पादशाही'। महाराष्ट्र के नेता पेशवा कहलाते थे। मध्य प्रदेश के मराठीभाषियों का विरोध महाराष्ट्र पहुँचा और यह रघुवीर कोष अब हिन्दी साम्राज्यवाद की प्रमाण पुस्तिका के रूप में पेश किया जा रहा है (3/134)।

बेनीपुरी ने डॉ. रघुवीर को हिन्दी का दुश्मन नम्बर एक कहा और बताया रघुवीर की इस खुराफ़ात का मुक़ाबला किया जा सकता था, यदि हिन्दी-संसार संघबद्ध होता (3/352)। संघबद्ध होना दरकिनार लोग प्रयत्न कर रहे थे कि जनपदीय बोलियों के आधार पर नये-नये प्रान्त बनाए जाएँ। बेनीपुरी ने लिखा : सो अब जनपदीय भाषाओं का आन्दोलन ज़ोर पकड़ेगा तो हर क्षेत्र के लोग अपनी बोलियों को ही अपनी भाषाओं के रूप में दर्ज कराएँगे—बिहार के लोग मगही, मैथिली और भोजपुरी को अपनी बतलाएँगे। उत्तर प्रदेश भोजपुरी, बुन्देलखण्डी, अवधी, ब्रजभाषा आदि भागों में बँट जाएगा। मध्यप्रदेश छत्तीसगढ़ी, निमाड़ी आदि बोलियों में बँटेगा। राजस्थान राजस्थानी का शोर मचा रहा है—कहाँ तक गिनाया जाए। यदि यही हवा रही तो अगली जनगणना

में हिन्दी का कोई नामलेवा भी नहीं रह जाएगा (3/353)। इस आन्दोलन से हिन्दी-विरोधियों को गहरी दिलचस्पी थी। बेनीपुरी ने बताया : हमने कई हिन्दी भाषी क्षेत्रों में देखा था, वहाँ के हिन्दी-विरोधी बड़े दिलचस्पी से इस आन्दोलन को बढ़ाने के लिए पूरी सहायता करने को तैयार हैं और कर रहे हैं (उपर्युक्त)। इसके विपरीत कुछ थोड़े-से लोग हिन्दी भाषी राज्यों की एकता के लिए भी प्रयत्न कर रहे थे। हमारी भाषा का क्षेत्र राजमहल से पानीपत तक और काठमाण्डू से इन्दौर तक था। हम कल्पना करते थे कि ये हिन्दी भाषी प्रान्त एक न एक दिन एक सूत्र में बँधेगा और भारत के सभी प्रान्तों में बड़ा होने एवं भारत के हृदय-भाग में स्थित होने के कारण सभी क्षेत्रों में समस्त भारत का नेतृत्व करेगा, जैसा पहले करता आया है (3/249)। बेनीपुरी की स्थापना है—"यह युग विखण्डन का नहीं, संघबद्ध होने का है (उपर्युक्त)। जब तक हिन्दी भाषी संघबद्ध नहीं होंगे तब तक वे अपने ही प्रदेश में हिन्दी को उसका उचित स्थान नहीं दिला सकते और जब इतने बड़े भूखण्ड में हिन्दी का वर्चस्व न होगा, उसके स्थान पर अंग्रेज़ी का बोलबाला होगा तो सारा देश भी अंग्रेज़ी से मुक्ति न पा सकेगा। प्रादेशिक भाषाएँ अंग्रेज़ी के दबाव से मुक्त होती हैं या नहीं, यह बहुत कुछ हिन्दी प्रदेश की जनता के ऊपर निर्भर है।"

हिन्दी का भविष्य : साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष पर

अन्य समाजवादियों की तरह बेनीपुरी ने भी योजना बनाई थी कि अंग्रेज़ी को हटाने के लिए दुकानों के साइनबोर्ड, जिन पर अंग्रेज़ी लिखी है, जलाए जाएँ। उनका कहना था कि गाँधी जी ने विदेशी कपड़ों की होली जलाई थी। अंग्रेज़ी को फेंकने के लिए हम अंग्रेज़ी में छपे साइन बोर्डो, कैशमेमो, लेटरहेड की होली जलाएँ तो इसमें अनौचित्य नहीं है। किन्तु साइन बोर्ड जल जाए और दूकानों में विलायती माल भरा रहे तो अनौचित्य साफ़ दिखाई देगा। साम्राज्यवाद पूँजी का निर्यात करता है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ भारत जैसे देशों में अपना माल बेचती हैं। ये माल देशी साइनबोर्ड के पीछे दुकान में रखा रहे तो साइनबोर्ड जलाने से स्थिति में कोई अन्तर न आएगा। इस समय हालत यह है कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की भाषा अंग्रेज़ी है। बड़े-बड़े बैंकों की भाषा अंग्रेज़ी है। जो अंग्रेज़ी के दैनिक निकलते हैं, वे राष्ट्रीय कहलाते हैं। नौजवानों में जो कुशाग्र बुद्धि के होते हैं, वे इन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की नौकरी तलाश करते हैं। इसलिए हिन्दी का भविष्य साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्ष पर निर्भर है। जब तक विदेशी पूँजी का प्रभुत्व ख़त्म नहीं किया जाता, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का माल बिकना बन्द नहीं होता, तब तक अंग्रेज़ी को इस देश से कोई हटा नहीं सकता। बेनीपुरी ने बैंकों और ट्रस्टों के बारे में जो कुछ कहा था, उसे याद रखना चाहिए। इन बैंकों और ट्रस्टों की भाषा अंग्रेज़ी है, और उसका दबाव हमारे सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन पर बराबर बना हुआ है।

बेनीपुरी कवि थे। गद्यकार थे, नाटककार थे, निबन्ध-लेखक थे। अपने को मूलतः

वह कलाकार मानते थे। परन्तु उनका राजनीतिक लेखन आज के भारत के लिए सर्वाधिक प्रासंगिक है और मेरी समझ में अन्य विधाओं में जो उन्होंने गद्य लिखा है उससे उनकी डायरियों, निबन्धों आदि में लिखा हुआ पत्रकार वाला गद्य अधिक सशक्त है। एक समाजवादी कार्यकर्ता की हैसियत से उन्होंने जनता में जो काम किया उसका बहुत ही सजीव वर्णन उन्होंने किया है। ऐसा वर्णन करना उन लोगों के लिए सम्भव नहीं है जो केवल साहित्यकार हैं। बेनीपुरी साहित्यकार होने के अलावा राजनीतिक कार्यकर्ता भी थे। राजनीति से क्रमशः दूर होते गये पर जब दूर नहीं थे, उस समय उन्होंने बहुत बड़ा काम किया। उन्होंने रूस और चीन में जो परिवर्तन हो रहे थे उनका वर्णन किया। उन्होंने कार्ल मार्क्स और रोजा लुग्ज़मबर्ग जैसे क्रान्तिकारियों की जीवनियाँ लिखीं। जयप्रकाश पर भी उन्होंने लिखा और सबसे अधिक उन्होंने अपने बारे में लिखा। जहाँ वह अपने बारे में लिखते हैं वहाँ आसपास का वातावरण भी हमारे सामने प्रस्तुत कर देते हैं। उनका कार्यक्षेत्र बहुत कुछ बिहार तक सीमित था परन्तु जैसी आँखों देखी बातें उन्होंने बिहार के बारे में लिखी हैं, वे अन्यत्र दुर्लभ हैं।

समाजवादी पार्टी विघटित हुई है वह अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँची परन्तु विघटित होने से पहले उसने जो कुछ किया, वह भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन के इतिहास का एक शानदार अध्याय है और यह शानदार अध्याय लिखने में बेनीपुरी का योगदान जयप्रकाश से किसी तरह घट कर नहीं है। विघटन की कथा से पता चलता है क्यों राम मनोहर लोहिया समाजवादी आन्दोलन के नेता हो गये? कैसे उन्होंने वर्गों के स्थान पर जाति-बिरादरियों को बिठाया और देश के राजनीतिज्ञों में बहुतों को प्रभावित किया। वह प्रभाव अभी तक जारी है। परन्तु इस प्रभाव के फैलने के पहले क्या स्थिति थी, उसकी जानकारी बहुत आवश्यक है। वर्तमान समाज की स्थिति से यदि उबरना है तो हमें उस दृश्य पर अपना ध्यान जमाना चाहिए जो लोहिया के अभ्युदय के पहले बिहार में थी और जिसका बेनीपुरी ने वर्णन किया हैं। चाहे साम्प्रदायिक समस्या हो, और जात-बिरादरी की समस्या हो, सामन्तों और पूँजीपतियों से लड़े बिना समाज से ये बुराइयाँ दूर नहीं हो सकतीं। भारतीय जनता में कितनी क्षमता थी, उसने कितनी बड़ी उपलब्धि देश के सामने रखी, यह बेनीपुरी की रचनाएँ पढ़ने से मालूम होती है। आगे लक्ष्य तक पहुँचने के लिए वे उपलब्धियाँ प्रेरणा का स्रोत बन सकती हैं। इसलिए मेरा कहना है इधर हिन्दी में जितनी रचनावलियाँ निकली हैं, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से **बेनीपुरी ग्रन्थावली** सबसे महत्त्वपूर्ण है।

□□

समाजवादी धारा के सम्पूर्ण लेखक

मस्तराम कपूर

हिन्दी के यशस्वी लेखक रामवृक्ष बेनीपुरी के व्यक्तित्व और कृतित्व के सम्बन्ध में विचार करते समय सर्वप्रथम हमारा ध्यान इस बात की ओर जाता है कि उन्हें किसी 'अलग श्रेणी' में नहीं बाँधा जा सकता। न तो व्यक्ति के रूप में और न लेखक के रूप में। व्यक्ति के रूप में वे सन्त भी थे और सांसारिक व्यक्ति भी। त्यागी भी थे और माया-मोह के पाश में जकड़े भोगी भी। उनमें ज़िन्दगी को अपने समूचे आकर्षणों-विकर्षणों के साथ अंगीकार करने की उमंग भी थी और ज़िन्दगी के निषेध अर्थात् मृत्यु को चुनौती देने का हौसला भी था। वे निर्धनता की चरमसीमा में भी जिये और अलमस्त शाही तबीयत भी पायी। अपनी और अपने इर्द-गिर्द के लोगों की मजबूरियों को देखकर वे रोये भी और अपने ठहाकों से महफ़िलों को भी गुंजायमान करते रहे। वे विद्रोही और क्रान्तिकारी भी थे और संविधानवादी भी। वे विध्वंसक भी थे और सर्जक भी।

उनका रचना-संसार इतना व्यापक और वैविध्यपूर्ण है कि हम उन्हें किसी निश्चित श्रेणी में नहीं रख सकते। वे उपन्यास-लेखक, कहानी-लेखक, कवि, नाटककार, बाल-साहित्यकार, निबन्धकार, रेखाचित्रों और शब्दचित्रों के रचयिता, जीवनी-लेखक और डायरी-लेखक सब कुछ हैं। उनके उपन्यासों को जीवनी भी कहा जा सकता है और लम्बी कहानी भी। उनकी कहानियों, संस्मरणों, रेखाचित्रों और शब्दचित्रों को अलग-अलग करना आसान नहीं है। उनकी कहानियों के पात्र अधिकतर समाज के जीते-जागते लोग थे, अतः इन्हें रेखाचित्र भी कहा जा सकता है और चूँकि कहानियाँ स्वानुभूत प्रसंगों पर आधारित होती थीं, इसलिए उन्हें संस्मरण की श्रेणी में रखा जा सकता है। उनके निबन्ध भी उनके बदलते मूड के अनुसार कई छटाएँ लिए हुए हैं। कहीं वे शब्दों की भाव-भंगिमा पर मुग्ध दिखाई पड़ते हैं, कहीं शब्द लाचार होकर विचारों और आवेगों का अनुसरण करते हैं। कहीं भाषा लालित्यपूर्ण हो जाती है और कहीं हथौड़े की चोट की तरह सटीक और कर्कश। साहित्यिक, राजनैतिक और सामाजिक चेतना के लेख भी कहीं सुगठित निबन्धों के रूप में, कहीं हल्की-फुल्की टिप्पणियों के रूप में और कहीं आक्रामक प्रबोधनों तथा चुनौतियों के रूप में लिखे गए हैं।

उनके इस बहु-आयामी और जटिल व्यक्तिव तथा कृतित्व को पकड़ पाना साहित्य के अध्ययन की उस शार्टकट प्रणाली में सम्भव नहीं था, जिसका हमारे विश्वविद्यालयों

में बोलबाला रहा है। इस प्रणाली में साहित्य पाठ्य-पुस्तकों की वस्तु होता है। परीक्षा के प्रयोजन से विद्यार्थियों द्वारा रटने-रटाने की चीज़। इसमें साहित्य को सीधी रेखाओं और सरल-सुबोध सूत्रों में प्रस्तुत किया जाता है, जबकि जीवन बहुत जटिल और संश्लिष्ट होता है, विशेषकर सर्जक का, जिसकी अभिव्यक्ति उसी जटिल और संश्लिष्ट रूप में उसकी रचना में होती है।

पाठ्य-पुस्तकों की ज़रूरत है कि साहित्य और साहित्यकार दोनों को कैटेगरी में बाँधा जाए। पाठ्यक्रमों में साहित्यकार, कहानीकार, निबन्धकार, कवि आदि के रूप में ही प्रवेश पा सकता है। पाठ्य-पुस्तकों तक साहित्य के सीमित हो जाने के कारण ही साहित्य पर अध्यापकों का वर्चस्व रहा है। साहित्य का मूल्यांकन भी अधिकतर अध्यापकों द्वारा ही किया गया जो साहित्य को पाठ्य-पुस्तकों की संकीर्ण दृष्टि से पढ़ते, पढ़ाते और परखते रहे। इसका एक परिणाम यह हुआ कि यदि किसी लेखक ने बहुत लिखा, तो वह भी लेखक का अवगुण बन गया क्योंकि पाठ्य-पुस्तकों की दृष्टि से तो एक-दो रचनाएँ ही काफ़ी होती हैं और जिस लेखक ने पाठ्य-पुस्तकों में लगने लायक़ दो कहानियाँ भी लिख दीं, वह भी अमर हो गया। यदि किसी लेखक ने एक विधा को छोड़कर दूसरी विधा में अपनी बात कहने का प्रयास किया, तो उसकी ओर पर्याप्त ध्यान देने की ज़रूरत नहीं समझी गई। कहानी में कविता की और कविता में कहानी की खोज भी इसी कारण होती है। इस पाठ्य-पुस्तकीय दृष्टि के कारण साहित्य की आत्मा को विखण्डित किया गया है।

साहित्य यदि लेखक के समूचे व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है, तो उसे उसी रूप में देखा जाना चाहिए। व्यक्ति, विशेषकर साहित्यकार और कलाकार कैटेगरी नहीं होता। वह 'कैटेगरीज़' तोड़नेवाला होता है। सच्चा लेखक पूरे जीवन में इसी संघर्ष में जुटा रहता है कि उस पर कोई ठप्पा न लगे, वह 'कैटेगरी' में न बँधे। 'कैटेगरी' बनने का मतलब है वस्तु बनना, पदार्थ बनना। मानव-चेतना का स्वभाव है कि वह वस्तु नहीं बनना चाहती। अतः साहित्य को जो लेखक की चेतना की अभिव्यक्ति होता है, विधाओं और श्रेणियों में विभाजित नहीं किया जाना चाहिए। जब लेखक अपनी अभिव्यक्ति के लिए किसी विधा को अधूरा पाता है, तो किसी दूसरी विधा को चुन लेता है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर और तॉल्सताय जैसे लेखकों ने जब तमाम विधाओं को अधूरा पाया तो बाल-साहित्य लिखा। गुरुदेव को तो चित्रकला को भी अपनाना पड़ा। लेकिन साहित्य को जीवन की सर्वश्रेष्ठ सर्जनात्मक क्रिया के रूप में देखने-समझने का रिवाज़ हमारे यहाँ नहीं रहा है। सीमित दृष्टि और सीमित प्रयोजन के कारण लेखकों को पाठ्य-पुस्तकों में लगी एक-दो रचनाओं के आधार पर जीवित स्मारक बनाने की ओर हमारे साहित्य जगत् की प्रवृत्ति रही है। इस प्रवृत्ति का शिकार कई बड़े साहित्यकार हुए हैं, बेनीपुरी भी जिनमें एक थे।

बेनीपुरी को अधिकांश तथाकथित साहित्यिक विद्वान उनके दो निबन्ध-संग्रहों—*माटी*

की मूरतें, गेहूँ और गुलाब—से जानते हैं। कुछ लोग एकाध और निबन्ध का नाम ले सकते हैं। उनकी जन्मशती के अवसर पर आठ खण्डों में प्रकाशित ग्रन्थावली उनके समूचे रचना संसार को प्रस्तुत करती है और इसे देखने के बाद आश्चर्य होता है कि इतना बड़ा लेखक, जो अपने समय की हर महत्त्वपूर्ण राजनीतिक, साहित्यिक-सांस्कृतिक घटना के साथ समग्र 'पैशन' के साथ जुड़ा रहा और जेल में या जेल से बाहर निरन्तर लिखता रहा, कैसे इतनी जल्दी विस्मृति में चला गया। उन्होंने कहानी, उपन्यास, नाटक, कविता, ललित निबन्ध, बाल-साहित्य, रिपोर्ताज, पत्रकारिता, जीवनियाँ, डायरी सभी विधाओं में पचास के लगभग पुस्तकें लिखीं और पन्द्रह-सोलह पत्रिकाओं का संपादन किया। स्वतन्त्रता-संग्राम से जुड़े रहकर वे बार-बार जेल जाते रहे और जेल से बाहर आकर आंदोलन में सक्रिय भाग लेते रहे। इस बाहरी संघर्ष के साथ-साथ उन्हें निजी, पारिवारिक जीवन में सतत संघर्ष करना पड़ा। निर्धन किसान परिवार में जन्मे बेनीपुरी का बचपन अभावों में बीता। माँ के स्नेह से बहुत छोटी उम्र में ही वंचित हो गए। कुछ वर्ष बाद पिता का साया भी सिर से उठ गया। फिर ननिहाल में पले-बढ़े और पढ़े और मामा से उन्हें पिता का स्नेह मिला और साथ ही किताबें पढ़ने की ललक भी। छोटी उम्र में शादी हो गई, लेकिन उससे पढ़ाई में विराम नहीं लगा। अलबत्ता, जब असहयोग आन्दोलन की आँधी चली, तो पढ़ाई से मन उचाट हो गया और कूद पड़े स्वतन्त्रता आन्दोलन में। सविनय अवज्ञा आन्दोलन से उनकी जेल यात्राएँ शुरू हुईं और 'भारत छोड़ो' आन्दोलन से होते हुए देश की स्वाधीनता तक सिर पर कफ़न बाँधकर घूमते रहे। स्वाधीनता के बाद समाजवादी राजनीति से जुड़े रहे। चुनाव भी लड़े, जिसमें हारे भी और एक बार जीते भी। जीविका के लिए और परिवार के उत्तरदायित्व निभाने के लिए लेखनी का ही सहारा लिया। मसिजीवी होने के कटु-तीखे अनुभवों से गुज़रते हुए बच्चों को पढ़ाने-लिखाने, उन्हें अपने पैरों पर खड़ा करने तथा अपने जन्मस्थान में अपने लिए एक सुन्दर नीड़ (मकान) बनाने की चाह के साथ अपने उथल-पुथलवाले राजनीतिक जीवन का तालमेल जैसे-तैसे बिठाते रहे। उत्कट आदर्शवादिता के साथ-साथ निजी जीवन की कटु सच्चाइयों को झेलते हुए भी वे ठसक और स्वाभिमान के साथ जिये। अन्तिम वर्षों में लकवे से पीड़ित होकर उन्होंने दुर्दान्त यातना भी सही। इस प्रकार उनका जीवन विपरीत परिस्थितियों से जूझते हुए बीता और उसी से निकला उनका साहित्य, जो अपने स्वाद में और अपने तेवरों में अपने समय के साहित्य से अलग दिखाई देता है।

उनकी कहानियाँ, उनके रेखाचित्र, उनके द्वारा गढ़े गए पात्र सब उस ज़मीन से आए, जिससे लेखक का सीधा सम्बन्ध था। जेल के क़ैदी, चौकीदार, भिखारी, हलवाहे, मज़दूर, किसान, घासवाली, पनिहारिन, कंजर, चरवाहे, चूड़ियाँ बेचनेवाली, बदसूरत, लेकिन नेक इन्सान, डायनें क़रार दी गई औरतें अर्थात् परिस्थितियों की यन्त्रणा में जीते हुए भी जीवन के प्रति आस्था जगानेवाले लोग उनकी लेखनी का विषय बने। लेकिन

प्रतिबद्ध लेखकों की तरह उन्होंने केवल रोटी को साहित्य का अभिप्रेत नहीं बनाया, अपितु रोटी के साथ-साथ आज़ादी को भी अभिप्रेत बनाया। इस भावना को उन्होंने गेहूँ और गुलाब के प्रतीकों से अभिव्यक्त किया। गुलाब सौन्दर्य का प्रतीक है और सौन्दर्य स्वतन्त्रता में, समता में तथा बन्धुता में है। न ग़ुलामी में सौन्दर्य हो सकता है, न विषमता में और न ही साम्प्रदायिक द्वेष में। बेनीपुरी के साहित्य में जहाँ रोटी की, अभाव की, पीड़ा व्यक्त हुई, वहीं स्वतन्त्रता, समता और बन्धुता का संघर्ष भी व्यक्त हुआ। यदि वे स्वतन्त्रता के संघर्ष से अलग-थलग रहकर साहित्य लिखते, तो वह उनकी अपनी दृष्टि से अधूरा साहित्य होता। उनके साहित्य की विशिष्टता इसी में निहित है।

सच्चे और सम्पूर्ण लेखक

बेनीपुरी जी सच्चे और सम्पूर्ण लेखक थे। सच्चे से तात्पर्य है कि उन्होंने जो भी लिखा लेखकीय दर्द से, लेखकीय विवशता से लिखा। वे 'यशसे, अर्थकृते, व्यवहारविदे' के प्रयोजनों से लिखनेवाले लेखक नहीं थे। इसका मतलब यह नहीं कि उन्होंने अपनी रचनाओं से पैसा नहीं कमाया। वे मसिजीवी थे। उन्होंने अपना और अपने परिवार का भरण-पोषण लेखकीय आय से ही अधिकतर किया। इसकी उन्होंने यन्त्रणा भी भोगी। जब फ़ीस न दे पाने के कारण उनके बच्चों के नाम स्कूल से कटे, तो उन्होंने अपने भीतर हाहाकार का अनुभव किया। ऐसी स्थितियाँ उनके जीवन में कई बार आईं। अपनी पुस्तकों को पाठ्य-पुस्तकों के रूप में लगाने के प्रयत्न भी किए। ख़ुद का प्रकाशन शुरू कर अपनी रचनाओं से धन अर्जित करने की भी कोशिश की। लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने बाज़ार की माँग के अनुसार लिखा या मात्र इसलिए कुछ लिखा कि उससे धन की प्राप्ति होनेवाली थी या किसी सरकारी या ग़ैर-सरकारी संस्था ने उन्हें लिखने के लिए वज़ीफ़ा दिया था। बाल-साहित्य लिखने के पीछे ज़रूर उनकी मंशा यह रही, जिसे उन्होंने अपनी डायरी में स्वीकार भी किया है। उन्होंने विश्व-साहित्य की सर्वश्रेष्ठ कृतियों को सरल और संक्षिप्त रूप में बच्चों के लिए प्रस्तुत किया। मानव जीवन के उच्च मूल्यों से प्लावित इन रचनाओं में उनके व्यापक सरोकारों का पता चलता है। किन्तु उन्होंने लिखा वही, जो वे लिखना चाहते थे, जो उनके जीवन की प्रतिबद्धताओं से जुड़ा हुआ था। उन्होंने अपने सिद्धान्तों से, अपने विश्वासों से तथा अपनी प्रतिबद्धताओं से समझौता नहीं किया। उनकी प्रतिबद्धताएँ क्या थीं? इस प्रश्न के उत्तर में कहा जा सकता है कि वे 'शिवेतरक्षतये' के प्रयोजन से लिखनेवाले लेखक थे। 'शिवेतर' उस सीमित अर्थ में नहीं, जिसे तुलसीदास या पद्माकर ने लिखा अर्थात् शारीरिक व्याधि के उपचार के लिए *हनुमानाष्टक* या *गंगावतरण* लिख दिया। शिवेतर इस व्यापक अर्थ में कि समाज में और व्यक्तिगत जीवन में भी जो अहितकर है, उसे नष्ट करने के लिए। लेखक का असली काम यही होता है और वही लेखक सच्चा लेखक होता है, जो इस कार्य में प्रवृत्त होता है। मनुष्य जीवन में सबसे बुरी चीज़ ग़ुलामी है और सबसे ख़ूबसूरत

चीज़ आज़ादी है। सुकरात ने साहित्य के मूलभूत मूल्यों, सत्य, शिव और सुन्दर को स्वर्ग से जोड़ा, जो मात्र एक कल्पना है। बाद के दार्शनिकों ने इन मूल्यों का उत्स ईश्वर, ब्रह्म, ख़ुदा आदि को माना, जो पुनः मात्र कल्पना है, हालाँकि आस्तिक लोगों के लिए यह तथ्य है। अस्तित्ववादी दार्शनिकों ने इस रूढ़ि को तोड़ा और उन्होंने ईश्वर आदि की सत्ता को नकारकर स्वतन्त्रता को ही साहित्य और कलाओं का सत्य, शिव और सुन्दर कहा। किन्तु इसकी सबसे सुन्दर अभिव्यक्ति गाँधी ने की, जब उन्होंने 'ईश्वर ही सत्य है' कहने की बजाय कहा कि 'सत्य ही ईश्वर है'। उनका सत्य था, आज़ादी। उन्होंने आज़ादी के लिए किए गए अपने जीवन के प्रयोगों को 'सत्य के प्रयोग' कहा। उनकी इस प्रस्थापना का निहितार्थ था कि जिसने सत्य यानी आज़ादी को पा लिया, उसने मानों ईश्वर को पा लिया। उनके इस वाक्य ने कि 'सत्य ही ईश्वर है' ईश्वर को ग़ैरज़रूरी बना दिया और सत्य अर्थात् आज़ादी को ही जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि या सबसे बड़ा लक्ष्य बना दिया, जिसके लिए हँसते-हँसते प्राणों का बलिदान भी किया जा सकता था। ख़ुद उन्होंने और उनके साथ हज़ारों लोगों ने इसके लिए प्राण दिए भी।

बेनीपुरी जी ने जो कुछ लिखा आज़ादी के लिए लिखा। वे जिये भी आज़ादी के लिए। उनका साहित्य उनके जीवन की ही एक अनिवार्य क्रिया थी, साँस लेने की तरह। आज़ादी के लिए वे लगभग नौ वर्ष जेल में रहे, तब भी लिखते रहे; जेल से बाहर रहे, तब भी आज़ादी के लिए संघर्ष करते रहे और लिखते रहे तब तक, जब तक उनकी शारीरिक क्षमताएं साथ देती रहीं। समाजवादी आन्दोलन से जुड़ने के कारण उनकी आज़ादी की कल्पना में भी विस्तार हुआ। यह पूँजीवादी लोकतन्त्र की आज़ादी तक सीमित नहीं थी जिसमें बुर्जुआ वर्ग की आज़ादी पर ही ज़ोर दिया जाता था। यह साम्यवादी आज़ादी से भी भिन्न थी, जिसमें सिर्फ़ आर्थिक आज़ादी का आश्वासन मिलता था और व्यक्ति की आज़ादी पर पाबन्दी लगती थी। यह आज़ादी की समाजवादी कल्पना थी, जिसमें स्वतन्त्रता को समता और बन्धुता से पुष्ट किया जाता है। यह सम्पूर्ण आज़ादी थी। बेनीपुरी निरन्तर आज़ादी के मोर्चे पर डटे रहे, अनवरत युद्ध में संलग्न रहकर जिये भी और लिखते भी रहे, क्योंकि आज़ादी का युद्ध कभी ख़त्म नहीं होता। सिर्फ़ मोर्चे बदलते हैं। जब भी उन्होंने अपनी लेखनी उठाई, उनके सामने ऐसे चेहरे प्रकट हुए, जो आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक गुलामी की यन्त्रणा भोग रहे थे और आज़ादी के लिए तरस-तड़प रहे थे। बेनीपुरी जी ने अपनी विभिन्न रचनाओं में जितने दलित-शोषित चरित्रों का निर्माण किया है, उतना शायद हिन्दी के किसी साहित्यकार ने नहीं किया। शायद प्रेमचन्द ने भी नहीं। यह मेरा अनुमान है। हो सकता है ग़लत हो किन्तु इस पर शोध होना चाहिए। दलित-साहित्य की आजकल प्रचलित परिभाषा के अनुसार तो उन्हें दलित साहित्य का लेखक नहीं कहा जा सकता लेकिन जिस दिन भी दलित साहित्य को समता की चाह से निकला साहित्य माना जाएगा, उस दिन बेनीपुरी जी को सम्भवतः सर्वप्रथम दलित लेखक माना जाएगा। स्त्रियों

की स्वतन्त्रता की अभिव्यक्ति में तो वे अपने समय में सबसे आगे थे। आज भी उनके इस विषय के निबन्धों को पढ़कर दंग रह जाना पड़ता है। स्त्री-मुक्ति की चेतना से सम्बन्धित उनके निबन्ध आज भी सबको चकित करनेवाले हैं और 'नई नारी' कविता भी। उन्होंने जितने स्वाभिमानी नारी चरित्रों की सृष्टि की है, वह भी एक साहित्यिक कीर्तिमान ही होगा। यह काम बेनीपुरी जी ने उस समय किया जब स्त्रियों के सम्बन्ध में शरत्चन्द्र, मैथिलीशरण गुप्त और प्रसाद की करुणामयी, अश्रुमयी और श्रद्धामयी नारियों को ही साहित्य में आदर्श माना जाता था। बेनीपुरी जी की नारियाँ संघर्ष करती हैं, विद्रोह करती हैं, वे पुरुष के चरणों में गिरकर अपने को धन्य नहीं मानतीं। वे प्यार करती हैं, प्यार के लिए कष्ट झेलती हैं, किन्तु प्यार के लिए पुरुष की गुलामी स्वीकार नहीं करतीं। उन्होंने जो भी चरित्र गढ़े या जीवन से उठाए वे गुलामी की बेड़ियों को तोड़ने का संघर्ष करनेवाले और आज़ादी के लिए तड़पनेवाले लेखक थे। सिर्फ़ आज़ादी की तड़प ही नहीं, आज़ादी के साथ-साथ बराबरी या समता की तड़प भी उनके साहित्य की मूल प्रेरणा है। इसीलिए उनके साहित्य का स्वाद बिलकुल अलग है। इसे समाजवादी साहित्य भी कहा जा सकता है, क्योंकि भारत में समाजवादी विचारधारा ने स्वतन्त्रता के साथ-साथ समता और बन्धुत्व को भी मानव जीवन के मूलभूत मूल्य माना। यहाँ तक कि उन्होंने जो बाल-साहित्य लिखा, उसमें भी आज़ादी और समता का रस बहता है।

सारांश यह कि बेनीपुरी जी आज़ादी के आराधक थे, जीवन में भी और साहित्य-लेखन में भी और उनकी आज़ादी सम्पूर्ण आज़ादी थी, जिसमें समता का भाव भी था और बन्धुता का भी। यह सम्पूर्ण आज़ादी का संघर्ष बाहरी भी था और भीतरी भी। एक तरफ़ देश की आज़ादी और समाज की आज़ादी और दूसरी तरफ़ अपने पूर्वाग्रहों से, अपने संस्कारों से, अपने अन्धविश्वासों से और अपने अभावों से आज़ादी। उस विदेशी ताक़त से भी युद्ध, जिसने आज़ादी को बन्धक बनाया था और उस अपने समाज से भी युद्ध जो गुलामी की बेड़ियों को प्यार करता था। यानी जिस डाल पर बैठे उसी को काटने का व्रत। यह था, बेनीपुरी का अनूठा भीतर और बाहर का एक साथ संघर्ष। जो दो मोर्चों पर एक साथ लड़ता है, उसे ही सम्पूर्ण लेखक कहा जा सकता है। वैसे हर सच्चा लेखक युद्धरत व्यक्ति होता है, आज़ादी के मोर्चे का सिपाही होता है। जब वह अपने भीतर के द्वन्द्वों से लड़ रहा होता है, तब भी उसका संघर्ष अत्यन्त कष्टमय होता है। किन्तु जब वह राजनैतिक और सामाजिक स्थितियों के ख़िलाफ़ भी युद्धरत होता है और निजी जीवन की स्थितियों से भी तब तो उसका संघर्ष आग में गलने के समान होता है। इतनी यन्त्रणा से जो सफलतापूर्वक गुज़रता है, वही सम्पूर्ण लेखक बनने का अधिकारी होता है। बेनीपुरी जी ऐसे ही लेखक थे।

युद्धरत लेखक और प्रतिबद्ध लेखक में अन्तर होता है। प्रतिबद्ध लेखक अपनी विचारधारा अथवा पार्टी के प्रति तो प्रतिबद्ध होता है, किन्तु ज़रूरी नहीं कि वह युद्ध में शरीक भी हो, वल्कि हमारे यहाँ तो अक्सर ऐसा ही हुआ है। वह युद्ध की स्थितियों को

तटस्थ रहकर देख सकता है और उसका अपने चश्मे से वर्णन कर सकता है। किन्तु युद्धरत लेखक स्थितियों के बीच रहकर लिखता है। इसीलिए उसके साहित्य में कुछ ऐसे गुण होते हैं, जो तटस्थ लेखक के साहित्य में नहीं आ सकते। बेनीपुरी जी के साहित्य में कुछ ऐसे ही गुण हैं। ये गुण हमें उन लेखकों में दिखाई देते हैं, जो स्वयं युद्धरत रहे हैं, जैसे माखनलाल चतुर्वेदी, गणेशशंकर विद्यार्थी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' आदि। यदि हम इस गुण को स्पष्ट रेखांकित करना चाहते हैं, तो कहना पड़ेगा कि युद्धरत लेखक स्थितियों को सिर्फ़ नाम देकर सन्तुष्ट नहीं होता। वह स्थितियों का चित्रण भर करने के बाद अपने को ज़िम्मेवारी से मुक्त नहीं मानता। वह उन स्थितियों को अपने मन के अनुसार बदलने के लिए रणभूमि में भी उतरता है। उसके शब्द केवल मोहक नहीं होते, वे जीवित सगे-सम्बन्धी होते हैं, जिनकी मान-मर्यादा की रक्षा के लिए वह स्वयं और उसके पाठक आग में छलाँग लगा सकते हैं। वह अपने शब्दों पर मुग्ध नहीं होता, बल्कि जब तक वह शब्द को कर्म में नहीं बदल लेता, तब तक उसकी आत्मा तड़पती रहती है। विचार-क्षेत्र और कर्म-क्षेत्र के बीच वह विभाजन-रेखा नहीं खींचता। वह समाज की पीड़ा का मात्र वर्णन नहीं करता, उसमें शरीक भी होता है। विचार और कर्म के दो मोर्चों पर यह संघर्ष बहुत ही कठिन होता है। इस संघर्ष में लगे लेखक को अक्सर साहित्यिक प्रतिष्ठा-पुरस्कार नहीं छूते। उसके पास प्रतिष्ठा-पुरस्कारों की तिकड़मों में पड़ने की फ़ुर्सत ही नहीं होती और न उसे इनकी परवाह होती है। कारण ये पुरस्कार-सम्मान उसे 'कैटेगरी' में बाँधने का, उस जड़ वस्तु बनाने का और उसे पुरातत्त्व के खँडहर में बदलने का प्रयास होते हैं।

बेनीपुरी जी को कर्मक्षेत्र में भी दो मोर्चों पर जूझना पड़ा। एक मोर्चा था राजनीति का, समाज को बदलने का और दूसरा था निजी और पारिवारिक जीवन का। बहुत कम लेखक ऐसे भाग्यशाली होते हैं, जिन्हें पारिवारिक मोर्चे पर नहीं जूझना पड़ता। बेनीपुरी भी ऐसे भाग्यशालियों में नहीं थे। ऐसे लेखकों की त्रासदी होती है कि वे पींग के दो छोरों पर लटके रहते हैं। जब एक छोर उठता है, तो दूसरा नीचे आ जाता है। बेनीपुरी जब राजनीति के क्षेत्र में अपने को जयप्रकाश नारायण, डॉ. राममनोहर लोहिया और आचार्य नरेन्द्रदेव की समकक्षता में पाते हैं, तो परिवार के मोर्चे पर बच्चों की फ़ीस के लिए तथा अपने लिए छोटे से घर के लिए तरसते हैं। हर सार्वजनिक व्यक्ति को इस यातना से गुज़रना ही पड़ता है कि बाहर को सँभालने के प्रयास में परिवार बिखरता है और परिवार को सँभालने के प्रयास में सार्वजनिक जीवन बाधित होता है। बेनीपुरी जी के साहित्य में इस त्रिविध संघर्ष का सौन्दर्य देखने को मिलता है।

मन में प्रश्न उठता है कि क्यों इस अद्भुत लेखक को हिन्दी जगत् में एक-दो रचनाओं के लेखक के रूप में ही याद किया गया। बहुत सोच-विचार के बाद उत्तर यही मिलता है हिन्दी साहित्य में सोच का दायरा हमेशा सीमित रहा है। यह साहित्य पाठ्य-पुस्तकों में सीमित रहा, जातियों में सीमित रहा, प्रदेशों में सीमित रहा और

लेखकीय गिरोहों में सीमित रहा। बेनीपुरी इन सारे घेरों से बाहर रहे। भूमिहार ब्राह्मण होकर उन्होंने विषमता का विषपान करते हुए उत्कृष्ट कोटि का दलित-साहित्य और नारी चेतना का साहित्य लिखा। वे अध्यापन व्यवसाय में नहीं रहे। यदि रहते तो शायद उनकी पुस्तकें भी लिखे जाने से पहले पाठ्यक्रमों में लग जातीं। वे किसी लेखक संघ में नहीं रहे। न वे प्रगतिवादी थे, न जनवादी, न हिन्दूवादी, न ब्राह्मणवादी और न दलितवादी। वे समाजवादी थे और समाजवादी ही रहे, जिनका मुख्य सरोकार था शिवेतर का विध्वंस और शिव का निर्माण। उन्हें न राजनीतिक सत्ता ने लुभाया, न आर्थिक सत्ता ने और न सांस्कृतिक सत्ता ने। समाजवादियों का कोई लेखक संघ नहीं बना, जो साहित्य की ज़मींदारी पर अपना अधिकार जमाता, जैसा कि दूसरे लेखक संघों ने लिया। बेनीपुरी अकेले महारथी थे और इसीलिए अद्वितीय भी।

वे विश्व स्तर के लेखक थे। अपने समय के विश्व स्तर के लेखकों को उन्होंने पढ़ा था और आत्मसात किया था। विश्व के अनेक महानायकों का उन्होंने अध्ययन ही नहीं किया, उनकी जीवनियाँ तथा संक्षिप्त विचार भी हिन्दी जगत् के लिए प्रस्तुत किए। ज्यॉ पाल सार्त्र के 'नॉशिया' का उन्होंने ऐसा विश्लेषण किया कि आज भी कोई क्या करेगा। अपनी डायरी लिखते-लिखते उनके हाथ आन्द्रे जीद का 'जर्नल' आया, तो इच्छा हुई कि वे भी अपनी डायरी को जर्नल का नाम दें। लेकिन उनकी डायरी कोई कम नहीं थी। उसे तॉल्सताय की डायरी के समकक्ष रखा जा सकता है। तॉल्सताय की डायरी की तरह ही उनकी डायरी भी लेखक के जटिल और संश्लिष्ट व्यक्तित्व की रेशा-रेशा छानबीन करती है। अपनी दुर्बलताओं, असफलताओं और हताशाओं का बेबाक तथा निष्कपट चित्रण करने के लिए इस डायरी को सुन्दर साहित्यिक कृति कहा जा सकता है। इस डायरी में न केवल उनके जीवन का संघर्ष, अन्दर और बाहर का संघर्ष पूरी तीव्रता के साथ मुखरित होता है बल्कि अपने समय की साहित्यिक, राजनीतिक स्थितियो पर भी प्रकाश पड़ता है।

रचनाकार का संघर्ष

किताबें लिखकर जीविका चलाने के लिए लेखकों को प्रकाशक पर आश्रित रहना पड़ता है। लेकिन किस प्रकाशक ने लेखक को उसका उचित पारिश्रमिक दिया? बेनीपुरी को भी इसके कटु अनुभव रहे। तभी तो उन्होंने लिखा कि बेईमानी के गिरोह का नाम ही है प्रकाशक यहाँ। उनके बेटे जितेन्द्र कुमार ऐसे कई कटु अनुभवों की कहानियाँ सुनाते हैं। इससे तंग आकर उन्होंने ख़ुद अपनी पुस्तकें छापने का निर्णय किया। डायरी में लिखते हैं—"नहीं, नहीं बेनीपुरी, तुम्हें अपने प्रकाशन के लिए कोई प्रबन्ध करना ही पड़ेगा। तुम घबराते हो कि प्रकाशन के प्रपंच में पड़कर कहीं लेखक से प्रकाशक न बन जाओ। किन्तु यदि प्रकाशक नहीं बने तो क्या लेखक भी बने रह सकते हो?" इस यातना से बेनीपुरी को ही नहीं, हिन्दी के सभी बड़े लेखकों को गुज़रना पड़ा और उन्हें

अपनी पुस्तकों का प्रकाशक ख़ुद बनना पड़ा, जैसे यशपाल, प्रेमचन्द, जैनेन्द्र, मैथिलीशरण गुप्त, दिनकर, वृन्दावनलाल वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, जयशंकर प्रसाद आदि आदि।

जीविका के लिए ये सब धन्धे करते हुए भी उन्होंने अपने सिद्धान्तों से समझौता नहीं किया। उनके अपने शब्दों में–"जो कुछ लिखा, युग की माँग पर या जीविका की माँग पर...ग़रीब किसान का बेटा, मुझे जीने के लिए लिखना पड़ा है। लेकिन कोशिश की है कि ऐसी चीज़ लिखूँ जो पैसे भी दे और युग की माँगों को भी अंशतः पूरा करे।" बच्चों के लिए लिखने में भी पैसे की ज़रूरत ने प्रवृत्त किया। इसे उन्होंने स्पष्ट स्वीकारा भी–"सोचता हूँ बच्चों के लिए कुछ पुस्तकें लिख दूँ। उनसे पैसे आते हैं। बच्चों को अच्छा साहित्य भी मिल जाता है।"

पारिवारिक ख़र्चे, प्रकाशन के ख़र्चे और फिर अपने लिए एक सुन्दर-सा घर (जिसे वे अपना स्मारक कहते थे) बनाने के आर्थिक दबावों ने उन्हें कभी फ़िल्मों के, कभी पृथ्वी थियेटर के चक्कर लगाने को बाध्य किया। इससे पैसे भी कमाए, किन्तु इस पर उन्हें साहित्यकार बन्धुओं के कटाक्ष ही सुनने को मिले। 18 अप्रैल, 1854 को उन्होंने डायरी में लिखा–"आत्माराम एण्ड संस के संचालक पुरी के यहाँ स्वागत, सभी साहित्यिक पधारे थे। चतुरसेन, जैनेन्द्र, उदयशंकर भट्ट, माधव जी, बनारसीदास चतुर्वेदी, 'उग्र'। बनारसीदास ने छेड़ की। जब से वे पैसे कमाने लगे हैं, मैंने अपना प्यार वापस ले लिया है। बेनीपुरी धमके–हमारे ये साहित्यिक ज्यों ही सुनते हैं कि उनमें से कोई ख़ुशहाल है कि जलभुन कर ख़ाक हो जाते हैं। चारों ओर उसकी शिकायत करते फिरते हैं। इन्होंने मान लिया है कि हिन्दी लेखकों को सदा कष्ट में ही रहना चाहिए। इससे मेरा यह कोप।" जैनेन्द्र जी ने पीछे कहा–"आपने बहुत अच्छा कहा और लोगों ने भी पसन्द किया।"

साहित्यकारों पर बेनीपुरी तब भी बरसे, जब शिवजी (आचार्य शिवपूजन सहाय) बहुत बीमार पड़े। 20 मई, 1953 को लिखा–"शिवजी बीमार हैं, टीबी का शिकार। शिवजी की यह बीमारी हमारे लिए चेतावनी है। हम साहित्यिक पैसे बचा नहीं पाते अतः कोई बड़ी बीमारी होने पर हमारे लिए चारों ओर अन्धकार ही नज़र आता है। यदि हमने एक दूसरे की मदद करने के लिए कुछ नहीं किया तो हमारा राम ही मालिक है।" और फिर 10 जून, 1953 को लिखते हैं–"लेकिन पटना में साहित्यिकों का एक गुट ऐसा है जो नहीं चाहता कि शिवजी के लिए कुछ हो। मुझे यह भी पता है कि कुछ लोग ऐसे भी हैं जो व्याकुलता से शिवजी की मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे हैं...दुःख की बात है कि ऐसे ही नीच लोगों की समाज में चलती है। ये मुर्दाख़ोर हैं, गिद्ध हैं।"

जब उत्साह की लहर उठती थी तो 'शाश्वत भारत' लिखकर व्यास बनने की सोचते थे और साथ ही अपनी महत्त्वाकांक्षा को कोसते भी थे। लिखते हैं–"ओहो–तुम्हारी महत्त्वाकांक्षा की भी कोई सीमा नहीं। कभी खीजते हो, सर पीटते हो। कभी हवा में

उड़ते हो। सातवाँ आसमान छूना चाहते हो। महत्त्वाकांक्षी! तो इसमें बुरा क्या है?"

कभी निराशा का दौरा पड़ता तो सब कुछ अधूरा लगता। 8 जुलाई, 1957 को लिखते हैं—"सब अधूरे...घर बनाया वह अधूरा पड़ा है। सामने का बग़ीचा अधूरा, परिवार बसाया, अधूरा-ही-अधूरा, बड़े साहब, मँझले साहब, छोटे साहब, सभी अब तक अधर में लटके रहे हैं। मेरी पत्रकारिता अधूरी रही। क्या एक भी ऐसा पत्र या पत्रिका निकाल सका जिसने पूरा सन्तोष दिया हो? मेरी लेखन-कला वह भी अधूरी, जो लिखा गया उससे तृप्ति नहीं हुई। जो लिखना चाहता हूँ लिख नहीं पाता। प्रकाशन शुरू किया वह भी अधूरा पड़ा है। मेरी राजनीति पर तो सदा से अधूरी की छाप पड़ी है।" आगे 14 सितम्बर, 1957 को लिखा—"लगता है मेरी आर्थिक इमारत एकाएक भहराकर गिरने जा रही है जब यहाँ आया, पाया बच्चे पढ़ने नहीं जा रहे हैं। क्यों? क्योंकि फ़ीस दो महीने से नहीं दी गई। फ़ीस के चलते बच्चों का पढ़ना बन्द हो गया, इससे बुरी बात कोई हो सकती है?"

फिर अपनी उपलब्धियों का स्मरण करते हुए अपने को दिलासा देते हैं। 14 मार्च, 1958 को डायरी में नोट किया—"मैं इतना बड़ा लेखक बन जाऊँगा क्या कभी सोच सका था? लोग मुझे बड़े आदमी में शुमार करेंगे, इसकी कल्पना भी की थी? ग़रीब का बेटा। पढ़ना-लिखना छोड़ दिया। स्वभाव का उद्दण्ड—सोचता था किसी तरह काट लूँगा। सफलता-असफलता की वैसी बात भी नहीं थी लेकिन वह हुआ और जो हुआ वह निश्चय ही किसी भी व्यक्ति के लिए गौरवप्रद माना जा सकता है।"

सोशलिस्ट पार्टी के अनुभव

साहित्य की तरह के अनुभव राजनीति में भी मिले। सविनय अवज्ञा आन्दोलन में बेसाख़्ता कूद पड़ने के बाद मुड़कर देखने का नाम नहीं लिया। जेल से छूटे तो सोशलिस्ट पार्टी और किसान सभा के काम में जुट गए। अशोक मेहता, अच्युत पटवर्धन और जयप्रकाश नारायण, रामनन्दन मिश्र, बसावन बाबू, गंगाशरण सिंह आदि समाजवादी नेताओं की समकक्षता, हज़ारीबाग़ जेल से जयप्रकाश के पलायन की योजना का सफल निष्पादन, स्वाधीनता के बाद सोशलिस्ट पार्टी और फिर प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के कार्यों में गहरी रुचि और फिर चुनावी अखाड़े में उतरना राजनीति में उनके जीवटपन को दर्शाता है। जून, 1953 में चुनावों के माहौल का वर्णन करते हुए लिखते हैं—"अजीब तमाशा है। काँग्रेसी सरकार के सारे साधन मिनिस्टर को जिताने के लिए काम में लाए जा रहे हैं। आधे दर्जन मिनिस्टर घूम रहे हैं। बीसियों एम.एल.ए., एम.पी. भी। कुछ देवियाँ भी हैं। इन देवियों में एक देवी जी तो कमाल कर रही हैं। उनके चरित्र की धूम पटना में है, दिल्ली में है और एम.पी. में है और वही सोशलिस्टों के सम्बन्ध में ऐसी-ऐसी भद्दी बातें करती हैं कि शरम भी शरमा जाए। जयप्रकाश और कृपलानी जी को भी गाली देने से नहीं हिचकतीं।" चुनावों में मिली निराशा के बाद वे लिखते हैं—"मुझे दो ही रास्ते

मालूम होते हैं या तो एक बार जैसा नेहरू ने चाहा था, हम सम्मिलित सरकार में शामिल हो जाएं जिससे सरकारी अफ़सर और धनी लोग समझ जाएँ कि पक्षपात और अन्याय करने से उनकी ख़ैर नहीं। या नहीं तो हमें संघर्ष की शरण लेनी चाहिए, हम जेलों को भरें, गोलियाँ चलें जिससे उनका पाप का घड़ा भर जाए।"

यह सम्मिलित सरकार की बात उसी वर्ष अप्रैल मास में गरम थी : 23 अप्रैल को उन्होंने डायरी में नोट किया था—"अभी संसद् के सेण्ट्रल हॉल में सुमित्रानन्दन पन्त जी के बड़े भाई से भेंट हुई...कहते थे बात तय हो चुकी है कि नरेन्द्र देव काँग्रेस के सभापति होंगे। सुचेता और जयप्रकाश मन्त्रिमण्डल में रखे जाएँगे और अशोक को प्लानिंग कमीशन में रखा जाएगा।"

लेकिन सोशलिस्ट पार्टी की राजनीति में न माया मिली न राम। फिर 1957 में दोबारा चुनाव लड़ा और जीत भी गए, तो अप्रैल 1957 को डायरी में लिखा—"पहले आकांक्षा थी कि एम.एल.ए. बनें। एम.एल.ए. बन गए, किन्तु किस क़ीमत पर? लगभग पाँच हज़ार रुपये लगाने पड़े। दौड़धूप अलग। इन रुपयों को चुकाओगे किस तरह? इधर-उधर के हाथ फेरकर...? पार्टी में विधानसभा के लीडर का चुनाव है, पार्टी के चेयरमैन का चुनाव है। कुछ लोग चाह रहे हैं तुम यह करो, वह करो, तुम्हारे मन में कामनाएँ जगती हैं और इधर कई दिनों से तुम इस मृगतृष्णा के पीछे दौड़ रहे हो।"

1955 में भी वे मृगतृष्णा के पीछे भागे थे। तब राज्यसभा का सदस्य बनने का प्रयास किया था। लिखते हैं—"हाँ, इधर एक ग़लती कर ली। बम्बई से ही कन्हैया की मारफ़त तीन चिट्ठियाँ भेजीं। आचार्य जी के लिए, जयप्रकाश के लिए और गंगा के लिए। मैंने लिखा, सुना है बिहार से राज्यसभा के लिए एक सीट खाली हो रही है। मुझे इसके लिए उम्मीदवार बनाइए। आचार्य जी ने कहा मुझे प्रसन्नता ही होगी। जयप्रकाश जी चले गए हैं। अशोक ने कहा उन्होंने भी प्रसन्नता प्रकट की। किन्तु आश्चर्य गंगा ने इस सम्बन्ध में बात नहीं कीं। क्यों? जब आचार्य जी ने उनसे चर्चा की तो उन्होंने कहा पहले बिहार से तय कर लेना होगा इसका अर्थ?"

इसका अर्थ कुछ दिन बाद खुला, तब उन्होंने 5 मार्च, 1956 को लिखा—"एक मोह टूटा। राज्यसभा के लिए अन्त में गंगाशरण ही खड़े हुए। भोर में मैंने पूछा तो ना ही की थी। मुझसे वोटर लिस्ट की नक़ल भी मँगवाई थी। और सन्ध्या में यह रचना? क्या यही राजनीति है? मुझसे साफ़ क्यों नहीं कहा? क्यों लुका-चोरी?"...और आगे लिखा—"तुम्हारी राजनीति के त्रिभुज की तीनों भुजाएँ बिखरी पड़ी हैं। वहाँ कौन है तुम्हारा? ये छोटे-छोटे लोग क्या समझें कि तुम कौन हो? राजनीति=शक्ति पूजा, शक्ति पूजा=दाँवपेंच, यदि यह नहीं तो वह नहीं आज का समय है यह और तुम पुराना सपना देख रहे हो?"

राजनीति की इस छलना ने उन्हें कुछ दिन पहले डसा था, जब वे अच्युत पटवर्धन

से मिलने बनारस में उनके आश्रम में गए थे। एक नवम्बर, 1955 को उन्होंने डायरी में लिखा था—"पचपन बरस का हो गया हूँ और अब भी अपना जाल फैलता जा रहा है। सेवा-जाल नहीं, माया-जाल, यह कर लिया वह भी कर लो। यह पा लिया, वह भी पा लो। दौड़ो, इनसे मिलो, उनसे मिलो। प्राप्ति हुई, गद्‌गद हो उठो। न पा सके, उद्विग्न बनो और फिर दौड़ो...मैं यह हूँ। उधर भाई अच्युत! यह क्या नहीं पा सकता था? किन्तु सबको छोड़ दिया। इस शान्त एकान्त में आ बैठा है। जो बन पड़ता है, लोकसेवा के लिए कर देता है। नहीं तो अपने में मगन। समझ में नहीं आता क्या करूँ? मोह नहीं छोड़ता, ममता नहीं छोड़ती। धन की इच्छा, यश की इच्छा और इच्छापूर्ति के लिए सभी कर्म-कुकर्म। जहाँ नहीं जाना, वहाँ भी जाना। मानव नहीं हुआ, कठपुतली बन गया। इच्छाएँ नचा रही हैं। मैं नाच रहा हूँ। 'अब मैं नाच्यो बहुत गोपाल' सूर की तरह आत्मा कभी-कभी चिल्ला उठती है, किन्तु मैं उसकी भी नहीं सुनता।"

मृगतृष्णा के रू-ब-रू

अपने लेखकीय जीवन की मृगतृष्णा ने भी मन को कचोटा। 22 जनवरी, 1956 को लिखा—"नहीं, बेनीपुरी जी, इतना मत दौड़ो! न वह पुराना शरीर, न वह पुरानी फुर्ती। जो कर चुके हो क्या वही बहुत नहीं है? क्या तुम्हें नहीं मिला है जो एक लेखक को मिल सकता है? इतना किस लेखक को मिला? अब तृष्णा समेटो, समेटो ग्रन्थावली? अब तुमने उसे ऐसी राह पर रख दिया है कि वह स्वयं अपना रास्ता तय कर ले सकेगी—बशर्ते कि अपने हाथ-पैर समेटो—आय के अनुसार ख़र्च करो। जो अधूरे काम हैं उन्हें पूरा करने में जल्दबाज़ी न करो—कारज धीरे होत हैं, काहे होत अधीर।"

राजनीति और साहित्य की बाहरी दुनिया की उठापटक में व्यस्त रहनेवाला लेखक जब अपनी निजी पारिवारिक दुनिया को अस्तव्यस्त होते देखता है तो उसकी शक्ति जवाब देने लगती है। लक़वा-ग्रस्त होने से कुछ पहले उनके समक्ष ऐसी ही स्थितियाँ आईं। 7 नवम्बर, 1959 को उन्होंने लिखा—"जब से प्रभा यहाँ आई है, बड़ी दुल्हन के तेवर चढ़े रहते हैं। जितेन्द्र जी अपनी पत्नी लेकर आये कि उनका रुख़ बिगड़ा। मेरे पास एक पत्र भेजा। मैंने वह पत्र देवेन्द्र को दिया। उस पत्र ने मुझे कितना दुःख दिया? मैं जिनके लिए मरूँ वे ज़रा भी एहसान मानने को तैयार नहीं। ख़ैर, मैं सारा ज़हर पीकर रह गया।" फिर आगे लिखा—"जब मैं सोचता हूँ माथा फटने लगता है। अभी तो कमाता हूँ सभी लोग खाते हैं तब तो मेरी हालत? यदि इनकी कमाई पर जीने का मौक़ा हो तब क्या होगा? मुझे अपने को इस नरक से उबारना चाहिए।" बाद में लिखा—"घर में शान्ति नहीं, सपने टूट रहे हैं। अधूरे काम घूर रहे हैं। बुढ़ापा अपना अलग रंग दिखला रहा है...क्या कभी सोचा था कि जिनको जन्म दिया, पालन-पोषण किया, आज भी जिनके लिए कितने सुकर्म-कुकर्म करता हूँ वे भी मेरी भावनाओं पर मेरी सुविधाओं पर ध्यान नहीं देंगे।"